सिद्धयोग

संस्थापक :
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 42; अंक : 5
अगस्त 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चल:।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण यौवन और जीवन (आयु) – सब चलायमान और नश्वर हैं, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत है। जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अत: सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण करना चाहिये। पापाचरण कदापि नहीं।

◆ ◆ ◆

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्ठो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ठ एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूपवाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

◆ ◆ ◆

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वारम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणांनाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थः– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में **सक्षम व सहायक हो।**

वर्ष : 42 अंक : 5

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च।।
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने।।
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे।।

देवाधिदेव, पुराण पुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्मा को नमस्कार है। सृष्टि करने वाले तथा सभी अर्थों के ज्ञाता स्वयम्भू! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा, परमात्मा को नमस्कार है। विश्व के उत्पत्ति-स्थान, देवों के हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णु को नमस्कार है।

अगस्त, 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 8
3. देवालय है मानव शरीर –डा.जे.पी. शर्मा 11
4. परिणाम – जनक कुलश्रेष्ठ 17
5. संस्कार भोग और जीवन दान – राजेश कुमार सिंह 21
6. प्यारे सद्गुरुदेव महाप्रभु चन्द्र मोहन जी –अवनीश कुमार भटनागर 25
7. सिद्धगुफा सुख धाम –योगाचार्य अमित कुमार मिश्र 29
8. अन्त समय न कोई, साथ निभाएगा! –जगदीश राए बंसल 30
9. अध्यात्म सिद्धि का गणितीय सूत्र –डॉ. ऋषिराम शर्मा 31
10. सद्बुद्धि का ज्ञान –निर्मला चन्देल 40

एक प्रति	: रू. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रू. 130.00
द्विवार्षिक	: रू. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रू. 850.00

विशेष लेख

योगी को सूक्ष्म व्यवहित एवं विप्रकृष्ट ज्ञान

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

पिछले प्रकरण में हमने योगी को मैत्र्यादि बल किस प्रकार प्राप्त होते हैं इस विषय को समझाने का प्रयत्न किया था। जिसमें महर्षि पतंजलिदेव की दिव्यानुभूतियों का व्यासभाष्य के अनुसार जो स्पष्ट आलोक है, उसे स्पष्ट करते हुए बताया था कि जो योगी धारणा, ध्यान, समाधि के प्रकार को भली प्रकार समझकर संयम पद्धति को जान लेता है, वह वस्तु-तत्व की यथार्थता को भलीभाँति जान लेता है। भगवान् पतंजलिदेव ने जहाँ मैत्री आदि का बल प्राप्त होने का साधक को वर दिया, वहाँ इसी प्रकार '**बलेषु हस्ति बलादीनि**' कहकर शारीरिक बल प्राप्त कर लेने की विधि का निर्देशन भी किया है। जहाँ योगी का मनोबल मैत्री करुणादि बलों से पूर्ण हो वहाँ पर शारीरिक बल की भी बहुत बड़ी आवश्यकता रहती है। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने बताया कि बलों के अन्दर संयम करने से योगी को हस्ति बलादि अनायास ही प्राप्त हो जाया करते हैं और वह बलों का निधि बन जाता है। इससे आगे के सूत्र में उन्होंने एक और महान विषय का उपदेश किया, वे कहते हैं कि-

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यहित विप्रकृष्टज्ञानम्।।

व्यासभाष्य में इसकी व्याख्या इस प्रकार है-

ज्योतिष्मती प्रवृत्तिरुक्ता मनसस्तस्या य आलोकस्तं योगी सूक्ष्मे वा व्यवहिते वा विप्रकृष्टे वाऽर्थे विन्यस्य तमर्थमधिगच्छति।

अर्थात्-प्रवृत्ति के प्रकाश में संयम करने पर योगी को सूक्ष्म, व्यवहित एवं विप्रकृष्ट ज्ञान अनायास ही होने लगता है।

सूक्ष्म ज्ञान

सूक्ष्म ज्ञान का अर्थ है-ऐसे अव्यक्त तत्व जिनको मनुष्य अपनी इन आँखों के प्रकाश से देख ही न सके। उसको किसी और के बल की आवश्यकता पड़े तब ही देख पाये, उसी को सूक्ष्मज्ञान कहते हैं। जैसे-आकाशमण्डल के अन्दर सूक्ष्म परमाणु छिपे रहते हैं जिनको सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा ही देखा जा सकता है, अन्यथा देखा ही नहीं जा सकता। दही के अन्दर छोटे-छोटे कीटाणु रहते हैं किन्तु मनुष्य की साधारण आँखों से वे नजर नहीं आते परन्तु दर्शक

यन्त्र से उन्हें देखा जा सकता है। इसी प्रकार से इस आकाश मण्डल के अन्दर जितने भी सूक्ष्मतम तत्व विद्यमान हैं वे योगी प्रवृत्यालोक में संयम करने से उसकी दृष्टि में आ जाते हैं और वह उनको देख लेता है।

व्यवहित ज्ञान

अर्थात्–जो वस्तुएँ छिपी हुई हैं–पृथ्वी के गर्भ में है या जल–गर्भ समुद्रादि के अन्दर हैं उन सभी का प्रवृत्यालोक में संयम करने से योगी को ज्ञान हो जाता है, जैसे–पृथ्वीगत धन, पहाड़ों के अन्दर सोना–चाँदी आदि की खानें यह सभी कुछ योगी के संयम का विषय बन जाता है।

विप्रकृष्ट ज्ञान

विप्रकृष्ट ज्ञान का अर्थ है–दूर से देखना। मनुष्य की स्थूल आँखें अधिक से अधिक दो–ढाई फर्लांग देखने की ताकत रखती हैं, इससे आगे दृष्टि नहीं जाती और एक या दो फर्लांग की दूरी में भी छोटी वस्तुएँ तो नजर में आती ही नहीं। यह मनुष्य की स्थूल दृष्टि की दशा है। मनुष्य की अपेक्षा गृद्धादि पक्षियों को कहीं अधिक दूर तक का दीखता है। किन्तु मनुष्य कर्म करने की सामर्थ्य रखता है अपने पुरुषार्थ के आधार पर वह सभी शक्तियों को प्राप्त कर सकता है। प्रवृत्ति के प्रकाश में संयम करने से योगी को दूर–दर्शन की शक्ति भी अनायास ही प्राप्त हो जाया करती है। क्योंकि प्रवृत्यालोक आवरण रहित शुभ सत्य प्रकाश है।

यहाँ विचारने वाली बात बस एक ही है वह यह कि प्रवृत्यालोक किस वस्तु का नाम है। जो व्यक्ति योग की परिभाषाओं को नहीं जानता है वह योग के इन पारिभाषिक शब्दों को समझ ही नहीं सकता। योगदर्शन के समाधि–पाद में दो प्रकार की प्रवृत्तियों का वर्णन पहले आ चुका है, जिनमें से विषयवती प्रवृत्ति प्रथम एवं विशोका वा ज्योतिष्मती दूसरी है। इन दोनों प्रवृत्तियों का वर्णन योगदर्शन के समाधिपाद के अन्दर इस प्रकार किया गया है:–

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धिनी।

इस सूत्र पर व्यासभाष्य की पंक्तियाँ पढ़िये:–

नासिकाग्रे धारयतोऽस्य या दिव्य गन्ध संवित् सा गन्ध प्रवृत्तिः, जिह्वाग्रे दिव्यरस संवित्, तालुनि रूप संवित्, जिह्वामध्ये स्पर्श संवित्, जिह्वामूले शब्द संवित्, इत्येताः प्रवृत्तयः उत्पन्नाश्चित्तं स्थितौ निबध्नन्ति, संशयं विधमन्ति, समाधि प्रज्ञायाञ्च द्वारी भवन्तीति, एतेन चन्द्रादित्य ग्रह मणि प्रदीपरत्नादिषु प्रवृत्तिरुत्पन्ना विषयवत्येव वेदितव्या, यद्यपि हि तत्तच्छास्त्रानुमानाचार्योपदे– शैरवगतमर्थतत्त्वं सद्भूत् तमेव भवति, एतेषां यथाभूतार्थ प्रतिपादन सामर्थ्यात् तथापि यावदेकदेशोपि कश्चिन्न स्वकरण संवेद्यो

भवति, तावत्सर्वं परोक्षमित्तापवर्गादिषु न दृढा बुद्धिमुत्पादयति। तस्माच्छास्त्रानुमानाचार्योपदेशोपोद्बलनार्थमेवाव
–श्यं कश्चिदर्थविशेषः प्रत्यक्षी कर्त्तव्यः। तत्र तदुपदिष्टार्थैकदेशस्य प्रत्यक्षत्वे सति सर्वं सुसूक्ष्मविषयमप्यापवर्गाच्छ्रद्धीयते, एतदर्थमेवेदं चित्तपरिकर्म निर्दिश्यते, अनियतासु वृत्तिषु तद्विषयाणां वशीकारसंज्ञायामुपजातायां समर्थस्य तस्यार्थस्य प्रत्यक्षी करणायेति। तथा च सति श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधयोऽस्या प्रतिबन्धेन भविष्यन्तीति।।

अर्थात्–योगी साधक यदि नासिका के अग्रभाग में चित्त संयमित करता है तो उसको थोड़े दिन के अभ्यास के बाद दिव्य गन्धों का साक्षात्कार अपने आप ही होने लगता है। इसी को गन्ध प्रवृत्ति कहते हैं। गन्ध घ्राणेन्द्रिय का विषय है। इसलिए इस प्रवृत्ति का नाम गन्धप्रवृत्ति है। जिह्वा रसनेन्द्रिय है और जिह्वा के अग्रभाग में रस का स्थान है। जिह्वा के अग्रभाग में संयम करने से योगी को दिव्य रसों का आस्वाद अनायास ही मिलता है। इसलिए इस प्रवृत्ति का नाम रस प्रवृत्ति है। जिह्वाग्र में संयम करने से दिव्य रसों की प्रवृत्ति अवश्य अवश्य होती ही है। अतः यह रसप्रवृत्ति भी उपरोक्त गन्ध प्रवृत्ति के समान योगी के चित्त को एकाग्र बना देती है। जिह्वा के ऊपर मुख का ऊपरी भाग तालु कहलाता है। भगवान व्यासदेव अनुभूत बात कहते हैं कि – **तालुनि रूपसंवित्** – अर्थात् तालु में संयम करने से नानावर्णाकृति वाले रूप का ज्ञान होने लगता है, यह प्रवृत्ति रूप को विषय बनाती है। इसलिए रूप सम्बन्धी विषयवाली होने से यह विषयवती है।

जिह्वा के मध्य भाग में वायु का स्थान है। इसलिए यदि कोई योगी जिह्वा के मध्य भाग में संयम करता है तो उसको स्पर्श ज्ञान का अनुभव होने लगता है यह प्रवृत्ति स्पर्श–ज्ञान का अवलम्ब होने से स्पर्शवता अर्थात् स्पर्श विषय वाली है। इसी प्रकार जिह्वा के मूल भाग में आकाशतत्व की प्रधानता होने से संयम करने पर योगी को विविध प्रकार के शब्द सुनाई देने लगते हैं एवं उसको शब्द ज्ञान होता है। ये सभी प्रकार की प्रवृत्तियाँ योगी के चित्त को एकाग्र करती हैं, संशयों का नाश करती हैं और उसे समाधि प्रज्ञा की ओर बढ़ाती हैं। इसी प्रकार से सूर्य, चन्द्रमादि ग्रह मणि प्रदीप रत्नादिकों में जो प्रवृत्ति बनती है वे सभी विषयवती है। ये सब तत्वार्थ यदि शास्त्र अनुमान और सद्गुरु रूप पूर्ण आचार्यों द्वारा प्राप्त किया हुआ है तो सत्य ही है, किन्तु फिर भी जब तक योगी अपनी इन्द्रियों द्वारा स्वयं अनुभव न कर ले, तब तक मोक्षमार्ग में दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुआ करती। इसलिए साधक को चाहिए कि– शास्त्र–अनुमान और आचार्यों द्वारा प्राप्त ज्ञान को भी स्वान्तःकरण संवेद्य बनाये और निजानुभूति के द्वारा उसकी पुष्टि करे। इस प्रकार का अभ्यास करते–करते मनुष्य के मन में श्रद्धा–दृढ़ता–स्मृति–समाधि

अपने आप प्राप्त हो जाती है। इन प्रवृत्तियों को विषयवती प्रवृत्ति कहा गया है। ये विषयवती प्रवृत्तियाँ भी योगी के चित्त को एकाग्र बनाती हैं, समाधि प्रज्ञा को प्रगट करती हैं और मुक्ति के द्वार की ओर ले जाती हैं। अतः ये सभी के लिए अभ्यसनीय हैं।

ज्योतिष्मती प्रवृत्ति

दूसरी प्रवृत्ति 'विशोका ज्योतिष्मती' के नाम से भगवान पतंजलिदेव ने लिखी है। सूत्र इस प्रकार है–

विशोका वा ज्योतिष्मती।

इस पर व्यासभाष्य इस प्रकार है:–

प्रवत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीत्यनुवर्तते। हृदयपुण्डरीके धारयतो या बुद्धि संवित्, बुद्धिसत्त्वं हि भ.स्वरमाकाशकल्पं, तत्र स्थिति वैशारद्यात्प्रवृत्तिः सूर्येन्दु ग्रहमणि प्रभारूपाकारेण विक ल्पते। तथास्मितायां समापन्नं चित्तं निस्तरङ्गमहोदधि कल्पं शान्तमनन्तमस्मितामात्रं भवति। यत्रेदमुक्तमतमणुमात्रमात्मानमनुविद्यास्मीत्येवं तावत्संप्रजानीते इति। एषा द्वयी विशोका ज्योतिष्मतीत्युच्यते, अस्मितामात्रा च प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते, यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभते इति।

विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के लिए श्री व्यासदेव जी ने ध्यान करने की विधि का संकेत किया। एक योगी जो हृदयकमल में ध्यान करता है तो उसकी बुद्धि में सत्त्व का प्रकाश हो जाता है। उसी सत्त्व प्रकाश में प्रवृत्ति बन जाने से सूर्य चन्द्र ग्रह मणि आदि के प्रकाश में रूपाकार वाली प्रवृत्ति बदल जाती है उससे स्थितिपद को पाकर योगी अस्मि प्रत्यय वाली बुद्धि वृत्ति का ध्यान करने लगता है। उस स्थिति में निस्तरंग महोदधि के समान सब वृत्तियों से हटकर चित्त शान्त हो जाता है और योगी अपने अणुमात्र स्वरूप को – 'अस्मि, अहमेवास्मि–यह मैं ही हूँ', ऐसा मनन करता हुआ अपने आप को शुद्ध प्रकाशमय देखता है। इसी का नाम **विशोका ज्योतिष्मती** है। यह भी प्रवृत्ति विषयवती ही मानी जाती है, किन्तु पहली प्रवृत्तियों की अपेक्षा यह उत्तम है। क्योंकि–इसमें निरन्तर अभ्यास करने से स्फुट प्रज्ञालोक हो जाता है और योगी मोक्षद्वार तक पहुँच जाता है। इन प्रवृत्तियों के निरन्तर अभ्यास से स्फुट प्रज्ञालोक वाला विशुद्ध प्रकाश ही प्रवृत्यालोक कहलाता है। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने सूक्ष्म, व्यवहित एवं विप्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रवृत्यालोक में संयम करना उचित समझा। जिससे सूक्ष्म, व्यवहित एवं विप्रकृष्ट ज्ञान उत्तमता के साथ अवश्य हो ही जाता है। इसी विषय को भगवान पतंजलिदेव ने प्राणायाम के फल के रूप में भी वर्णित किया है। रज–तम का आवरण इन्द्रियों के प्रकाश के रास्ते में एक भारी रुकावट है। वह इन्द्रियों की शक्ति को

अपने अधिकार तक नहीं पहुँचने देता। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास का फल बतलाया।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।

अर्थात्–प्राणायाम करने से इन्द्रियों की दूर–स्पर्शन, दूर–दर्शन, दूर–श्रवण आदि की शक्ति पूर्णरूपेण बढ़ जाती है।

प्रवृत्यालोक भी वही शुद्ध प्रकाश है, उसका संयम राजयोग की साधना का रूप है और प्राणायाम हठयोग की साधना का रूप है। योगी यदि अपने संयम को दृढ़ करता चला जाये तो उसे अपनी साधना के बल पर ही ये सब परिणाम होने लगते हैं। प्रवृत्यालोकन्यास वही साधक कर सकता हैं जिसने अपने दृढ़तम अभ्यास के द्वारा संयम को परिपक्व कर लिया हो।

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या।
संयोग एषां न त्वात्मभावा–
दात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय 1/2)

अर्थात् काल, स्वभाव, निश्चित फल देने वाला कर्म, आकस्मिक घटना, पाँचों महाभूत, जीवात्मा कारण हैं, इस पर विचार करना चाहिये। इन काल आदि का समुदाय भी इस जगत का कारण नहीं हो सकता। क्योंकि वे चेतन आत्मा के अधीन हैं (जड़ होने के कारण स्वतन्त्र नहीं)। जीवात्मा भी इस जगत् का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह सुख–दुःखों के हेतुभूत प्रारब्ध के अधीन है, स्वतन्त्र नहीं है।

भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र का योग ऐश्वर्य

संसार में मनुष्य को जहाँ–जहाँ शक्ति दिखाई देती है, वहाँ पर वह झुकने जाता है और उस शक्ति की पूजा व आराधना करता है। लोक में भी कहावत है चमत्कार को नमस्कार है। जहाँ चमत्कार देखने को मिलता है, वहाँ संसार के लोग नत् मस्तक होते हैं। इसी की लोकोत्तर विभूति ही शक्ति कहलाती है। गीता में भगवान ने कहा है– ''परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।'' इस प्रकार से भगवान ने अपने अवतरण के तीन प्रयोजन बतलाये साधु व सज्जनों की रक्षा करना, दुरात्माओं का नाश करना एवं धर्म की संस्थापना करना। द्वापर युग के अन्त में इन्हीं कारणों से भगवान का अवतरण हुआ। महाभारत जैसे घोर संग्राम का सूत्रपात हुआ। अधर्मी मारे गये और धर्म की रक्षा हुई। महाभारत का युद्ध होने में अनेक दिव्य आत्माओं का एक दूसरे के प्रति विद्वेष एवं नाश का संकल्प बन चुका था। जिसकी पूर्णता इस युद्ध में हुई। महाभारत के युद्ध भूमि में गीता में भगवान कहते हैं– ''मैं इस समय महाकाल बन कर आया हूँ, दुष्टों का नाश करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। अर्जुन तुम्हारे युद्ध न करने पर भी यह लोग अब जीवित नहीं रह पायेंगे। मैंने इन्हें सूक्ष्म रूप में पहले ही मार दिया है। अब तुम इन्हें मारने वाले में निमित्त बनो।'' महाभारत में जगह–जगह पर पाण्डवों की रक्षा के लिए भगवान ने अपनी योग शक्ति का प्रदर्शन किया है। श्रीमद्भागवत् महापुराण में भगवान कृष्ण के विषय में व्यास देव जी महाराज कहते हैं कि ''एते च अन्शा कला पुंसः कृष्णस्तु भगवन स्वयं'' तथा जितने भी अवतार हुए हैं वह सब अंश कलाधारी महापुरुष थे, किंतु भगवान कृष्ण स्वयं ही सोलह कलाओं से परिपूर्ण थे। श्रीमद् भागवत पुराण में भगवान दिव्य योगैश्वर्य का वर्णन विस्तार से पाया जाता है।

प्रकट होने के बाद शैशवावस्था में ही भगवान ने अपनी दिव्य शक्ति का प्रयोग किया है। पूतना वध हो शकटासुर अघासुर धेनुकासुर आदि–आदि महा दैत्यों के नाश के लिए भगवान ने अपने अष्टविद् ऐश्वर्य के प्रभाव से ही ऐसा किया है। योग शास्त्र में आठ प्रकार की सिद्धियों का वर्णन आता है। ये सिद्धियाँ– अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व,वशित्व तथा यत्रकामावसायित्व आदि के नाम से जानी जाती हैं। बिना इन सिद्धियों के प्रयोग के बड़े–बड़े दैत्यों का नाश संभव नहीं था। अणिमा सिद्धि में योगी अपने शरीर को अत्यन्त अणु बना लेता है। महिमा सिद्धि में शरीर को पर्वत के समान बड़ा बना लेता है। लघिमा में शरीर को अत्यन्त लघु बना लेता है। प्राप्ति सिद्धि के आ जाने पर मन के इच्छा मात्र से वस्तुएँ उपस्थित हो जाती हैं। प्राकाम्य सिद्धि में समस्त कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। ईशत्व सिद्धि के आ जाने पर योगी

में दूसरे प्राणियों के मन बुद्धि पर शासन करने की योग्यता हो जाती है। वशित्व में सभी प्राणियों को वश में करने की योग्यता होती है। यत्र का भाव सायित्व में जहाँ-जहाँ जैसी-जैसी कामना करता उस-उस स्थान पर प्रकट रहकर अपनी इच्छा से व्यवहार करता है। उसकी सर्वत्र अव्याहतगति होती है। इस प्रकार से भगवान ने बृज लीलाओं में सर्वत्र अपने योग के ऐश्वर्य से विजय पाई और दुष्टों पर विजय पाई है। भगवान की योग माया बहुत ही दुस्तर है। ब्रह्मा जी तक भी उनकी योग माया को न जान सके।

एक बार ब्रह्मा जी उनके दर्शन के लिए वृन्दावन आये। भगवान को ग्वाल बालों के साथ अनेक क्रीड़ाएँ करते देखा। भगवान कभी-कभी अपने बाल सखाओं के साथ खेलते हुए उनका झूँठा भी खा रहे थे। ब्रह्मा जी ने सोचा कि ये कैसे भगवान है जो सामान्य ग्वालों का झूँठा तक खा रहे हैं। ब्रह्मा जी ने सोचा ये भगवान नहीं हो सकते। उन्होंने उनकी परीक्षा की दृष्टि से ग्वाल बाल एवं सभी बछड़े चुराकर अपने ब्रह्म लोक में ले गये। इधर बृज में भगवान ने अपनी योग माया का समाश्रय लेकर उतने ही ग्वाल-बाल और बछड़े बना लिये। योग दर्शन में एक सूत्र आता है जब योगी अस्मितानुगत समाधि से आगे चला जाता है तब उसे एक विशेष सिद्धि मिलती है। सूत्र है- "निर्माण चित्तान्यास्मिता" मात्रा अर्थात् योगी अपने चितत्व का साक्षात्कार कर लेता है तब वह अपने प्रधान चित्त से अनेक चित्त बना लिया करता है और फिर अनेक शरीर बनाकर व्यवहार करता है। भगवान ने भी अपनी योग माया से उतने ही निर्माणित शरीर बना लिए। एक वर्ष तक ब्रह्माजी ने बछड़े और ग्वाल-बालों को अपने लोक में छिपाये रखा। एक दिन बृज में आकर महान् आश्चर्य देखा कि ब्रह्म लोक में जो ग्वाल बाल ले गये थे, हूबहू जैसे ही बछड़े और ग्वाल बाल बृज में विद्यमान थे। भगवान के इस योगेश्वर्य को देख कर ब्रह्मा जी को अपनी मूर्खता पर पश्चाताप हुआ और भगवान के पास आकर ब्रह्मा जी ने क्षमा माँगी और अनेक प्रकार से स्तुति की।

इसी प्रकार से भगवान ने इन्द्र की परम्परा से जो पूजा होती थी उसे बन्द करा दिया और गिरिराज पर्वत की पूजा शुरू करवा दी। इससे इन्द्र कुपित हो गये और उन्होंने बृज में प्रलयकालीन वर्षा शुरू कर दी। सात दिन तक घनघोर वर्षा होती रही। भगवान ने गिरिराज पर्वत को कनिष्ठिका अंगुलि पर उठा धारण कर लिया और बृजवासियों की रक्षा हुई। ये सब घटनाएँ हमारे देश में सर्वविदित हैं। एक बार बृज में दावानल के प्रकोप से त्राहि-त्राहि मच चुकी थी।

भागवत के दशम् स्कन्ध में उन्नीसवें अध्याय में आया है-

तथेति मीलिताक्षेपु भगवानग्निमुरुवणम्।
पीत्वा मुखेन तान कृच्छ्ाद्योगाधीशो व्यमोचयत्।।

भगवान ने उस अग्नि को अपने मुख में पान कर सब ग्वाल-बालों की रक्षा की। इसी प्रकार से एक दिन वृन्दावन में रहते हुए गौओं और ग्वाल बालों ने यमुना का विषाक्त जल पान

कर लिया। उस समय भगवान वहाँ पहुँचे और अपनी अमृत वर्षिणी दृष्टि से उनको सचेतन कर दिया। देखिये निम्न श्लोक-

वीक्ष्यतान् वै तथा भूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः।
ईक्षयामृत वर्षिण्या स्व नाथान् सम जीवयत्।।

अर्थात् भगवान ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से उन पर देखा और सबको जीवित कर दिया।

भागवत के दशम् स्कन्द में रास लीला का वर्णन आता है। वहाँ पर भगवान श्रीकृष्ण ने अपने योगेश्वर्य का भरपूर प्रयोग किया। वहाँ रास में जितनी गोपी थी उतने ही कृष्ण ने अपने रूप निर्माण कर लिया। एक गोपी के साथ एक-एक कृष्ण दिखाई देने लग गये। योग विज्ञान की ऊँची उपलब्धि में यह संभव है। चित्त निर्माण की योग्यता से ही ये सम्भव होता है। अनेक चित्त बनाने की योग्यता उसी में होती है जिसका चित्त क्लेश कर्म एवं कर्म-संस्कार के बन्धन से मुक्त हुआ, अत्यन्त निर्मल हो चुका है। इस प्रकार श्रीमद् भागवत् में भगवान् की दिव्य कर्म एवं लीलाओं का वर्णन है तथा गीता में भी भगवान के योगेश्वर्य का दर्शन होता है। गीता के एकादश अध्याय में भगवान से प्राप्त दिव्य दृष्टि के बल से उनके विराट स्वरूप को देखा, तो कह उठे-

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो, लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं, प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।।

आपके बराबर का इस सृष्टि में कोई नहीं है और आपके आगे भी कोई नहीं होगा। इस प्रकार परात्पर ब्रह्म ने अपने योगेश्वर्य का प्रदर्शन किया है। अन्यत्र भी पुराणों में भगवान् कृष्ण की महिमा का वर्णन मिलता है। गीता भगवान् की साक्षात् वाणी है। यही कारण है सारे संसार में इसकी मान्यता है और संसार के सारे भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। गीता सारे उपनिषद् और वेद का निचोड़ है। भगवान् कृष्ण को परात्पर ब्रह्म कहा गया है। भगवान् कृष्ण का अवतरण दिवस जन्माष्टमी 13, 14 अगस्त को सारे देश-विदेश में धूम धाम से मनाया जा रहा है। इस पावन अवसर पर भगवान कृष्ण चन्द्र के पावन चरणों में कोटि-कोटि नमन है।

"सच्चा शिष्य गुरु के किसी बाहरी काम पर लक्ष्य नहीं करता। वह तो केवल गुरु की आज्ञा को ही सिर नवाकर पालन करता है।"

देवालय है मानव शरीर

डा. जे.पी. शर्मा, पाँटा साहिब, सिरमौर (हि. प्रदेश)

ब्रह्माण्ड सृजन से पूर्व ब्रह्म नितान्त अकेला था। सब तरफ घनघोर अंधेरा था। मूलतः ब्रह्म को निर्गुण तथा निराकार बताया गया है, कहते हैं अकेलेपन से ब्रह्म को व्याकुलता उत्पन्न हुई तथा इच्छा हुई कि – मैं बहुविध हो जाऊँ "एकोऽहंबहुस्याम्।" इस तरह माया पैदा की गई जो तीन गुणों से परिपूर्ण थी अर्थात् सात्विक, राजस तथा तामस गुणों वाली थी। इच्छा पूर्ति होने के बाद ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ, तत्पश्चात् बहुविध सृष्टि की रचना की गई। "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते" गीता में श्री कृष्ण भगवान ने यही तत्व स्पष्ट किया है। ब्रह्म तथा माया में मूलभेद है– ब्रह्म निर्गुण, निराकार, माया सगुण साकार है। ब्रह्म अनादि, निर्विकार तथा माया विकारी है। ब्रह्म नामातीत होते हुए भी अनेकों रूपों में है– जैसे अच्युत, अनन्त, नादरूप, ज्योति स्वरूप, चैतन्यरूप, निजानन्द, सत्तारूप तथा साक्षी आदि है। माया, दृश्य, मिथ्या, परिमेय, विनाशी तथा सगुण होती है। ब्रह्म–अदृश्य, निरुपाधि, सत्य, अविनाशी तथा निर्गुण तथा आनन्द से ओत–प्रोत है। माया– पंचभौतिक है, जबकि ब्रह्म शाश्वत है। ब्रह्मसार तथा माया असार है। ब्रह्म नैरन्तर्य तथा माया क्षणिक है। मूलतः माया ब्रह्म में पूर्णतया अन्तःस्थ तथा निर्गुण थी। ब्रह्म से पृथक होकर ही सगुण हुई तथा समयानुसार परिवर्तनीय बनी। सबसे पहले वह आकाश बनी। आकाश में स्पन्दन होने से वायु बनी तथा वायु में घर्षण होने से आग बनी। आग से समयान्तर जल तथा जल से सृष्टि उत्पन्न हुई। प्रत्येक सृष्ट पदार्थ में परमात्मा का वास है–भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–

ईश्वराऽहं सर्वभूतेषु ह्रद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

माया के तमोगुण से पंचमहाभूतों की रचना हुई। जड़ तथा चेतन पदार्थ पृथ्वी रूप में है। मृदु तथा प्रवाही जलरूप है। ऊष्मा तथा प्रकाशी, तेजरूप (आग) है तथा चैतन्य चान्चल्य, वायु तत्व है। शून्यत्व आकाश तत्व है। ब्रह्माण्ड के ऊपर मूल में माया सूक्ष्मरूप है। सृष्टि में प्रथम जलचर बने, तत्पश्चात् खेचर (पक्षी) और बाद में भूचर पैदा हुए। जिस प्रकार पंचमहाभूतों से सृष्टि का निर्माण हुआ, उसी प्रकार मानव शरीर भी पंचमहाभूतों से मिलकर बना है। शास्त्रों में कहा गया है–

क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंचतत्व यह अधम शरीरा।।

मानव देह चतुर्विध है– स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। शरीर स्थूल है। मनुष्य की वासना, कामना तथा कल्पनायें सूक्ष्म देह की हैं। बुद्धिकारण–देह है तथा महावाक्य का ज्ञान महाकारण शरीर है। "ईश्वर अंश जीव अविनाशी" अर्थात् कभी नष्ट न होने वाला जीव

(आत्मा), परमात्मा का ही अंश है। स्पष्ट है हम परमात्मा के हैं और परमात्मा हमारा है, यही शाश्वत सत्य है। जिस प्रकार जीव परमात्मा का अंश है, उसी प्रकार पिण्ड (शरीर), ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म अंश है। अर्थात् हम जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में देखते हैं, वह सूक्ष्म रूप में हमारे पिण्डों में भी विद्यमान है। ''यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'' के अनुसार ही सारा संसार तथा शरीर बना है। समस्त विश्व में जितने देवता हैं, उतने देव हमारे शरीर में अवस्थित हैं। संसार में भगवान जैसे सर्वदेवाधिपति के रूप में विद्यमान हैं, उसी प्रकार इस शरीर रूपी देवालय में जीवात्मा सनातन देव के रूप में विद्यमान है। इसीलिए कहा गया है – ''देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः।'' इसीलिए ब्रह्माजी, मनुष्य को बनाकर अति प्रसन्न हुए, क्योंकि मनुष्य उस ब्रह्म को जान सकेगा। यह इसकी विशेष बात है।

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या,
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान्।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय,
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदपाप देवः।।

(श्रीमद्भागवत् 11/9/28)

अर्थात् भगवान ने अपनी अचिंत्य शक्ति से– माया से वृक्ष, सरीसृप (रेंगने वाले), पशु, पक्षी, मच्छर, डांस, भृङ्ग, भंवरे, तितलियाँ तथा सीप मछली आदि अनेकों योनियाँ बनाई फिर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने मनुष्य शरीर की रचना की जो बुद्धि से युक्त थी। शरीर में दोनों आँखें, सूर्य तथा चन्द्रमा की प्रतीक हैं, ठीक वैसे जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य और चन्द्र विराजमान हैं। हमारे शरीर में साढ़े तीन करोड़ नस नाड़ियों का जाल बिछा है, उनमें प्रकट तथा अप्रकट रूप से देवता विराजमान हैं। नेत्रों में सूर्य तथा चन्द्रमा का वास है, जिनसे हम रूप दर्शन करते हैं। नासिका द्वारा हम गन्ध सूँघकर गन्ध तत्व का ज्ञान करते हैं। नासिक्त छिद्रों में अश्विनी कुमारों का वास होता है। दांयी नासिका छिद्र में सूर्य तथा बांयी नासिका छिद्र में चन्द्र नाड़ी बहती है। सूर्य, गर्म तथा चन्द्र शीतल होता है। सूर्य नाड़ी में गंगा तथा चन्द्र नाड़ी में यमुना बहती है तथा शुषुम्ना नाड़ी में सरस्वती का स्थान कहा गया है। अतः जो फल मनुष्य को गंगा, यमुना तथा सरस्वती के संगम तीर्थ, इलाहाबाद में स्नान करने से मिलता है वही पुण्य योग साधक को प्राणायाम साधना से मिल जाया करता है। त्रिवेणी संगम शरीर में ही स्थित है। सुषुम्ना में विद्या ज्ञान की देवी रहा करती है। दोनों कानों से शब्द सुनाई देते हैं, जहाँ श्रोत्रेन्द्रियैं देव का निवास होता है। मुँह के अन्दर जिव्हा से रसों का ज्ञान प्राप्त है। रस में वरुण देव रहा करते हैं। त्वचा से स्पर्श ज्ञान होता है, जहाँ वायु देवता रहते हैं। इसी प्रकार हाथों से वस्तुओं के लेन–देन, बल–पराक्रम इत्यादि से संबंधित कार्य हुआ करते हैं, जहाँ इन्द्र देवता रहते हैं। धर्म के कार्य, तीर्थों के दर्शनार्थ दोनों पैरों से आने–जाने के कार्य होते हैं, अतः दोनों पैरों में श्री विष्णु

जी का वास है। जीभ से दो तरह के कार्य होते हैं–प्रथम तो रसास्वादन तथा दूसरा वाणी का।
जिव्हा में सरस्वती रहती है। जननेन्द्रिय, आनन्द (काम) का स्थान है, जिससे सृष्टि बढ़ती है।
अतः यहाँ प्रजापति निवास करते हैं। गुदान्द्रिय से मल विसर्जन के कार्य होते हैं जिससे
शरीर–पेट शुद्ध रहता है, जहाँ मित्र देवता का वास रहता है। अतः शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ,
पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। अतःकरण (मनः) भीतरी इन्द्रिय मानी गयी है। मनुष्य अनेकों प्रकार के
कार्य अपनी बुद्धि विवेक के बल पर किया करता है। बुद्धि में श्री ब्रह्मा जी का स्थान है। कईयों
की बुद्धि, तीव्र, मध्यम तथा सूक्ष्म होती है, अतः कार्यों की सिद्धि भी बुद्धि बल के अनुसार हुआ
करती है। गायत्री सिद्धि से बुद्धि बल बढ़ा करता है। बुद्धि के कारण ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है।
अहंकार के देवता रूद्र भगवान हैं। अहं से अहंकार का ही बोध होता है। अहँ (मैं) तीन प्रकार का
होता है। सत्व, रज, तम तीन प्रकार से अहंकार नापा जाता है। राजस तथा तामस अहं से
संसारी वस्तुओं का ज्ञान होता है, परंतु सात्विक अहं से अहं तत्व (सोऽहं) तत्व जागृत होता है।
शरीर स्थित मन दो रूपों में कार्य करता है। बाह्यमन (बाहरी मन) जो लालची, छली, धोखे
बाज, अविश्वसनीय होता है, परंतु अंतः मन (भीतरी मन) सच्चा, विश्वसनीय तथा देवस्वरूप
होता है। मन सदैव, संकल्प–विकल्प बनाता रहता है। मानव शरीरस्थ मन का बड़ा महत्व है।
मन स्वस्थ है तो सब उत्तम ही उत्तम है, मन विकारी है तो विकार ही पैदा होंगे। मनुष्य यश,
अपयश, लाभ–हानि, पाप–पुण्य, कर्म–अकर्म, सुख–दुःख इत्यादि मन के कारण ही प्राप्त
करता है। मन की गति चंचल है, मन के दौड़ने की सीमा नहीं है। मन ही परम कारण है– **"मन
एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः"**। मन की शक्ति से मनुष्य ईश्वर प्राप्ति करता है। मनुष्य
मन के बल पर बड़े से बड़े कार्य कर जाता है। तभी तो कहा जाता है – "मन के हारे हार है, मन
के जीते जीत, मन ही मेरा शत्रु और मन ही मेरा मीत"। जो मनुष्य मन से हार गया तो कुछ भी
सफलता हाथ न लग पायेगी। श्री मद्भागवत् (11/23/46) में कहा गया है–

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च, श्रुतंचकर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः, परो हि योगो मनसः समाधिः।।

अर्थात् दान, अपने धर्म का पालन, यम, नियम, विद्याध्ययन, सत्कर्म तथा
ब्रह्मचर्यादिव्रत – इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन स्थिर हो जाये। मन का भगवत् चरणों
में लग जाना ही योग है। चन्द्रमा मन के अधिष्ठाता देव हैं। शरीरस्थ चित्त भी चंचल प्रकृति का
है, यह पल–पल अपने रूप बदला करता है। चित्त चैतन्य होता है। शरीर में कहीं भी स्पन्दन या
चलन चित्त से ही होता है। सत्, चित्त तथा आनन्द के तीन शब्द मिलकर "सच्चिदानन्द" बनते
हैं जिसे हम ब्रह्म कहते हैं। सत–निराकार, निर्गुण ब्रह्म की जो इच्छा शक्ति (एकोऽहं बहुस्याम्)
है, वह इच्छा शक्ति चिद्विलास है। सत के बाद चित् तत्व है, जो चैतन्य रूपा शक्ति है। इसी के
कारण मनुष्य के शरीर में तत्तत् शक्तियों का आविर्भाव होता है। ब्रह्म ने ब्रह्माण्ड बनाया तथा ये
सब देवता आकर उसी में स्थित हो गये, किंतु फिर भी ब्रह्माण्ड में चैतन्यता नहीं आई। तब चित्त

के अधिष्ठाता देव 'क्षेत्रज्ञ' ने अपने चित्त सहित हृदय में प्रवेश किया तब विराट पुरुष उसी समय चैतन्य होकर जल से उठकर खड़े हो गये–

चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा।
विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत।।

(श्रीमद्भागवत् 3/26/70)

सम्पूर्ण विश्व को चैतन्य करने वाली 'चित्‌शक्ति' ही है। भजन, पूजा, अर्चना, ध्यान के अन्तर्गत यही चित्त शक्ति, नाना प्रकार के चित्तों का निर्माण करती है। चित्त शक्ति के देव प्रकृति शक्ति, चिच्छक्ति ही है। अतः इसी शक्ति की उपासना द्वारा हमें शिव ज्ञान–ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार संसार में सभी क्रियाओं का संचालन करने वाले देवता, मनुष्य शरीर में रहते हैं। उन्हीं के द्वारा हम धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के लिए कार्य करते हैं। इसी कारण मानव की सभी कामनायें पूर्ण हुआ करती हैं। इन देवों के सन्तुष्ट हो जाने पर प्राणियों के हृदय में स्थित भगवान की प्राप्ति हो जाती है। गीता में कहा गया है–

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि सब भूत–प्राणियों के हृदयों में भगवान विराजते हैं, इसलिए उपासना, पूजा, प्रार्थनाओं द्वारा मनुष्य की वांछित कामनाओं की इच्छा पूर्ति कर दिया करते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे गाय के शरीर में दूध–घी आदि पदार्थ रहते हैं, परंतु उनसे गाय मोटी तो नहीं हो जाती, पर जब गाय दुहने के बाद, उसी दूध को गाय को पिला दिया जाय, तो गाय वास्तव में मोटी व स्वस्थ हो जाती है। इसी प्रकार ईश्वर भी हृदयस्थ रहते हुए, उपासना के द्वारा ही मानव का कल्याण करते हैं।

अजपा – जप तथा षटचक्रों के देवता

सामान्यतः स्वस्थ मनुष्य चौबीस घंटों में 21,600 बार श्वास–प्रश्वास लेता है। हर पल श्वास–प्रश्वास अविरल चलता ही रहता है। प्रत्येक श्वास–प्रश्वास में ''हंसः हंसः'' का जप चलता रहता है। यह जप प्राकृतिक रूप से हर प्राणी जपा करता है परंतु प्राणी को इसका आभास नहीं है। इसी जप को अजपा–जप या हंसः गायत्री कहते हैं। क्योंकि यह जप बिना जपने के स्वतः ही हो रहा है, इसी से अजपा–जप कहा गया है। सुषुम्ना में हंसः का विपरीत ''सोऽहं'' जप हो जाता है। यथा–

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसोऽतिपरमं मंत्रं जीवो जपति सर्वदा।।

मनुष्य के शरीर में छः चक्र होते हैं, उनमें देवताओं का निवास है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा – ये षट् चक्र हैं, सातवाँ कपाल में सहस्त्रार चक्र होता है। ये सातों चक्र अन्तरिक्ष में पाये जाने वाले सात आसमान हैं, तभी लोग

बातों में कहा करते हैं– अरे भाई आप तो सातवें आसमान की बातें कर रहे हैं। ब्रह्माण्ड में वास्तव में सात आसमान कहे गये हैं, 'परब्रह्म' सातवें आसमान में विराजित माने गये हैं, वहीं से करोड़ों ब्रह्माण्डों की व्यवस्था बनाये हुए हैं। मूलाधार चक्र में जीवनी चेतना शक्ति, सर्पाकार रूप में अपनी पूँछ अपने मुँह में दबाये, साढ़े तीन लपेटे लेकर कुण्डली मार कर बैठी रहती है, जो साधक, योग साधनाओं अथवा हठ–योग द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत कर देता है, तब इसके मुँह से अपनी दुम निकल जाती है तथा वेग के द्वारा कुण्डलिनी नाड़ी सुषुम्ना में प्रवेश करने लगती है। मूलाधार में भगवान 'गणेश' अपनी दोनों शक्तियों रिद्धि तथा सिद्धि के साथ विराजमान हैं। उपस्थ के ऊपरी भाग में छः दलों का स्वाधिष्ठान चक्र है, जहाँ ब्रह्माजी अपनी शक्ति सरस्वती के साथ रहते हैं। मणिपूरक, नाभि प्रदेश में दस दलों युक्त चक्र है, इसे सूर्य मण्डल भी कहा जाता है। भगवान विष्णु अपनी शक्ति लक्ष्मी के साथ यहाँ वास करते हैं। नाभि से ऊपर हृदय प्रदेश में बारह दलों से युक्त चक्र, 'अनाहत' कहलाता है, जहाँ भगवान शिव अपनी प्रियतमा शक्ति पार्वती सहित रहते हैं। इससे ऊपर कंठ प्रदेश में सोलह दलों से युक्त, विशुद्धि चक्र होता है, जहाँ प्राणशक्ति सहित, 'जीवात्मा' रहती है, इसमें 'अ से अः' तक सोलह स्वर पद्म के पत्रों के रूप में होते हैं। दोनों भौंओं के मध्य 'हं–क्षं' युक्त दो दलों वाला चक्र 'आज्ञा चक्र' कहलाता है, जहाँ पूर्ण ज्ञान शक्ति से युक्त 'गुरु देवता' वास करते हैं। इसी चक्र में महाकुण्डलिनी का सामंजस्य शिव के साथ होता है। शिव ही ब्रह्माण्ड के प्रथम गुरु माने गये हैं। माता पार्वती को अमरकथा सुनाने से पूर्व भगवान शिव ने ही माता को 'गुरु दीक्षा' दी थी। कपाल क्षेत्र में पचास मातृका के वर्णों को बीस बार उच्चारण करने से एक हजार मातृकायें हो जाती हैं तथा इसी के हजार दलों में ये मातृकायें हैं। यहाँ चन्द्र देव अपने पूर्ण व्यक्तित्व सहित रहते हैं, इसे 'सहस्त्रार चक्र' कहते हैं। गुरु से प्राप्त 'गुरुमंत्र' चैतन्य होकर षट्चक्रों के भेदन में सहायक हो जाता है उससे मनुष्य अथाह आनन्द का भास करता है। इससे प्राणी अन्तर्मुखी हो जाता है।

मनुष्य के हाथों में पाँच अंगुलियाँ, पंच तत्वों की प्रतीक होती हैं। अंगुष्ठ में अग्निदेव, तर्जनी में वायुदेव, मध्यका में आकाश मण्डल, अनामिका (रिंग फिंगर) में पृथ्वी तथा कनिष्ठिका में जल तत्व अथवा वरूण देव रहते हैं। पृथ्वी तत्व के स्वामी शिव होते हैं। इसी प्रकार तर्जनी अंगुली की जड़ में देवों के गुरु वृहस्पति, बीच की (मध्य वाली) अंगुली में 'शनि, राहू तथा केतु', अनामिका की जड़ में सूर्य, मंगल देव तथा कनिष्ठिका में बुध देव रहते हैं।

ब्रह्माण्ड दस दिशायों से घिरा हुआ है, उसी प्रकार मानव पिण्ड (शरीर) में दश द्वार होते हैं। सृष्टि में अनेकों प्रकार की वनस्पति हैं जो बार–बार क्षीण होने या काटे जाने से पुनः बढ़ जाया करती हैं, ठीक उसी प्रकार हमारे शरीर में, सिर पर करोड़ों बाल होते हैं, जो काटे जाने के पश्चात् पुनः उग जाते हैं। उसी प्रकार दूब घास, कास घास तथा जड़ी–बूटियाँ पृथ्वी पर उग आती हैं तथा काट देने अथवा खुरच देने पर पुनः उग जाती हैं, क्योंकि वनस्पतियों के

पोषक तत्व पृथ्वी के अन्दर ही पाये जाते हैं जिनके सेवन से बार-बार उगने की शक्ति वनस्पति को मिल जाती है। प्रहलाद ने असुर बच्चों को श्री प्रभु का भजन करने को प्रेरित करते हुए कहा था कि हे बालको! अपने हृदय में आकाश के सदृश्य नित्य विराजमान भगवान का भजन करने में कौन-सा विशेष परिश्रम है। वह भगवान समान रूप से सब प्राणियों के अत्यन्त प्रेमी तथा मित्र हैं और तो क्या अपने 'आत्मा' ही हैं। उनको त्यागकर भोग सामग्री इकट्ठी करने के लिए इधर-उधर भटकना कितनी बड़ी मूर्खता है।

कोऽतिप्रयासोऽसुर बालका हरे रूपासने स्वेहृदि छिद्रवत् सतः।
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां, सामान्यतः किं विषयोपपादनैः।।

(श्रीमद्भागवत् 7/7/38)

चाहे मनुष्य को संसार की सारी धन-दौलत, सम्पत्ति मिल जाये फिर भी वह याचक ही बना रहता है, उसे सन्तुष्टि नहीं होती तथा सदैव अपूर्ण ही रहता है तथा और भी नाना प्रकार की कामनायें उत्पन्न होती ही रहती हैं। जीव ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म में सारा ज्ञान, सारी शक्ति, समस्त विद्या, अनन्त शासन सत्ता, इत्यादि सब शक्तियाँ हैं। अतः जीव (प्राणी) उसी ब्रह्म का अंश होने से उसको जब ये सारी शक्तियाँ प्राप्त हों तब वह भी पूर्ण हो जाता है। धर्म शास्त्रों में ब्रह्मसम्मिलन योग्य शरीर बनाने का विधान है-

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।

अर्थात् यज्ञ और महायज्ञों के करने से इस शरीर को ब्रह्म सम्मेलन के योग्य बनाया जाता है। इसलिए मनुष्य शरीर में स्थित जो देवता हैं, उनकी पूजा, उपासना की जाये तो शीघ्र ही शरीर शुद्ध, पवित्र, ब्रह्मसम्मिलन योग्य हो जाता है। इसी कारण कहा गया है- यह शरीर (पिण्ड) देवालय है और इसमें स्थित जीवरूप, भगवान के साथ अनेक देवता निवास करते हैं -

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः।

श्री सद्गुरु देव भगवान के पावन चरणों में सेवक का कोटिशः प्रणाम व सभी गुरु भाइयों को जय गुरु देव।

''जो चित्त आत्मा में निवेशित हो गया है और जिसके सारे मल समाधि के द्वारा धुल गये हैं, उसके आनन्द का वाणी के द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, केवल अन्तःकरण द्वारा अनुभव किया जा सकता है।''

परिणाम

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

परिणाम दो प्रकार के होते हैं– 1. निमित्त कारण, 2. उपादान कारण। जिस प्रकार कुम्हार घट का निमित्त कारण है और मिट्टी का घर उपादान कारण है। परंतु ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। वही ब्रह्म समस्त ब्रह्माण्डों के निर्माण का निमित्त कारण है और वही ब्रह्म ब्रह्माण्ड रूपों से स्वयं प्रगट हो गया।

इसी प्रकार वृत्तियाँ संस्कारों की निमित्त कारण है और चित्त संस्कारों का उपादन कारण है। इसी उपादान कारण को योग की परिभाषा में धर्मी कहते हैं और उसके कार्यों को धर्म कहा जाता है। इसलिए एकाग्रतावस्था में वृत्तियों के रूकने पर ये संस्कार नहीं रुकते। मानव शरीर में पूर्व जन्मों में किए गए वासनायुक्त कर्मों के कारण संस्कार बनते हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण प्राणी को नया शरीर मिलता है। नये शरीर में उन अच्छे और बुरे संस्कारों का प्राणी भुगतान करते हैं। मनुष्य के अतिरिक्त देव योनियों से लेकर कीट पतंगों तक के शरीर भोग योनियां हैं। परंतु मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है, जो भोग योनि के साथ–साथ कर्म योनि भी है। परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि दी है। अतः वह इस विवेक बुद्धि के द्वारा अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितियों का सदुपयोग करता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में वह यह समझ करके कि ये प्रतिकूल परिस्थितियाँ मुझे परिष्कृत व शुद्ध करने के लिए प्राप्त हो रही हैं। इस कारण वह इनसे विचलित नहीं होता है। परंतु अनुकूल परिस्थितियों में अपनी विवेक बुद्धि के द्वारा वह हर्षित न होकर अपने आपको यह जानने का प्रयत्न करता है कि यह शरीर मन, बुद्धि, चित्त आदि जड़ पदार्थ हैं और मैं स्वयं चेतन इनसे भिन्न हूँ। इसका सतत् अभ्यास करते रहने से वह असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार धारणा के कारण चित्त विक्षिप्तावस्था से एकाग्रतावस्था में आता है। तब यह चित्त रूपी धर्मी का धर्म परिणाम है। अर्थात् एक धर्म का दबना और दूसरे धर्म का प्रगट होना चित्त रूपी धर्मी का धर्म परिणाम है।

परिणाम तीन प्रकार के होते हैं, 1. धर्म परिणाम, 2. लक्षण परिणाम, 3. अवस्था परिणाम। जिस चित्त में ये परिणाम होते हैं, उसे धर्मी कहते हैं और ये परिणाम धर्म कहलाते हैं।

1. धर्म परिणाम :– जैसे कुम्हार मृत्तिका के बर्तन बनाता है तो मिट्टी धर्मी है क्योंकि उसमें कोई परिणाम नहीं होता है और बर्तन के आकार में मिट्टी के बदलने को धर्म कहते हैं। इनमें से एक धर्म का दबना और दूसरे धर्म का प्रगट होना धर्मी मिट्टी का धर्म परिणाम है।

इसी प्रकार योग में धारणा के द्वारा योगीविक्षिप्तावस्था से एकाग्रतावस्था को जब प्राप्त

होता है तो यह उसका धर्म परिणाम है। विक्षिप्तावस्था का दबना और एकाग्रतावस्था का प्रगट होना ही धर्म परिणाम है।

2. लक्षण परिणाम:– धर्म परिणाम में मिट्टी का एक नया आकार है। यह आकार मिट्टी में छिपा हुआ था। अब प्रगट हो गया। छिपे हुए आकार का प्रगट होना अर्थात् भविष्य से वर्तमान में आना लक्षण परिणाम है।

काल भेद से धर्मी में तीन लक्षण होते हैं।

(अ) भविष्य लक्षण परिणाम:– जब तक घट प्रगट नहीं हुआ था तब वह अनागत (भविष्य) लक्षण वाला था।

(ब) वर्तमान लक्षण परिणाम:– जब घट प्रगट हो गया तब वर्तमान लक्षण परिणाम वाला हो गया।

(स) भूत लक्षण परिणाम:– जब घट फूट कर पुन: मिट्टी में मिल गया, तब भूत लक्षण परिणाम वाला हो गया।

इसी प्रकार के चित्त का अपने इष्ट का सहारा लेकर एक ही प्रवाह में परिणित होना चित्त की एकाग्रता कहलाती है। जब विक्षिप्तता का धर्म दबता है और एकाग्रता का धर्म प्रगट होता है तब चित्त की एकाग्रता विक्षिप्तता में अनागत (भविष्य) रूप में छिपी हुई थी। अब वह वर्तमान रूप में आ गई। यह एकाग्रता रूप चित्त का वर्तमान लक्षण परिणाम है। जब एकाग्रता परिणाम निरोध परिणाम में लीन हो गया, तब यह भूत लक्षण परिणाम वाला हो गया।

3. अवस्था परिणाम:– अनागत लक्षण परिणाम से वर्तमान लक्षण में प्रगट होने तक उसकी अवस्था को दृढ़ करने में और इसी प्रकार वर्तमान लक्षण से अतीत लक्षण में आने तक उसकी अवस्था को दुर्बल करने में जो प्रतिक्षण परिणाम हो रहा है, वह अवस्था परिणाम है।

जो वर्तमान लक्षण युक्त धर्म में नयापन से पुरानापन आता जाता है, वह प्रतिक्षण बदलता रहता है और वर्तमान लक्षण को छोड़कर अतीत लक्षण में चला जाता है। यह लक्षण का अवस्था परिणाम है।

मिट्टी का घट जो वर्तमान में है, वह शनै: शनै: भूत में बदलता रहता है और अन्तत: वह टूट–टूट कर मिट्टी में ही मिल जाता है यह घट का अवस्था परिणाम है। यह अवस्था परिणाम प्रतिक्षण होता रहता है।

हम बालक से युवा और युवा से वृद्ध किसी एक दिन में या घड़ी में नहीं हुए। हमारा यह अवस्था परिणाम अर्थात् अवस्थाओं का परिवर्तन प्रतिक्षण होता रहता है। इसी को अवस्था परिणाम कहते हैं।

इसी प्रकार एक योगी को एकाग्रता परिणाम के लक्षण निरोध परिणाम तक आने में एक काल विशेष लगता है। एकाग्रता परिणाम के लक्षण भूत में जाते हैं और उसके साथ ही

भविष्य में भी होते रहते हैं। इस स्थिति को योगी के चित्त का निरोध परिणाम कहते हैं।

निरोध परिणाम–

निरोध परिणाम में एकाग्रता के संस्कारों का अभिभव और निरोध संस्कारों का प्रादुर्भाव होता है। 3/9 इस निरोध परिणाम में धर्मी चित्त का व्युत्थान होता रहता है। ध्यान करने के उपरान्त योगी व्युत्थान की अवस्था में आ जाता है। यह योगी की सम्प्रज्ञात समाधि है। अन्तिम अवस्था की इस स्थिति में योगी अपने इष्ट में लक्षकार हो जाता है।

समाधि परिणाम–

समाधि परिणाम में संस्कार से उत्पन्न जो चित्त का विक्षेप होता है, उसका क्षय और एकाग्रता रूप धर्म का उदय होता है। अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि में व्युत्थान का क्षय और एकाग्रता का उदय किया जाता है।

जब समाधि अवस्था में विक्षिप्तता बिल्कुल दब जाती है और चित्त अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाता है, तब असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। धर्मी चित्त ने अपना भोग और अपवर्ग कार्य पूर्ण कर लिए। अब कोई कार्य शेष न रहने से वह चित्त अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाता है।

चित्त के समान ही पंच महाभूतों एवं इन्द्रियों के परिणाम भी होते रहते हैं।

''एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याता'' 3/13

भूतों में धर्म परिणाम–

मिट्टी रूप धर्मी का पिण्ड रूप धर्म छोड़कर घट रूप धर्म को स्वीकार करना उसका धर्म परिणाम है।

लक्षण परिणाम–

यह घट रूप में परिवर्तन होने के कारण वर्तमान काल में प्रगट होने से पहिले भविष्य काल में छिपा रहना उसका अनागत लक्षण परिणाम है तथा इस धर्म का भविष्य काल को छोड़कर वर्तमान काल में प्रगट होना वर्तमान लक्षण परिणाम है।

जैसे घट का फूटना, यह वर्तमान लक्षण परिणाम है और वर्तमान काल को छोड़कर भूत काल में छिप जाना अतीत लक्षण परिणाम है। अर्थात् घट के फूटने पर उसके ठीकरे रूप में परिवर्तित हो जाना।

अवस्था परिणाम–

घट के ठीकरे रूप में परिवर्तित होकर पुनः मिट्टी रूप हो जाना अवस्था परिणाम है। यह अवस्था परिणाम अत्यन्त धीमी गति से होने से पर्याप्त समय लग जाता है।

योगी के चित्त की एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुँचने में समय अधिक लगने से कभी–कभी योगी अधीर हो जाता है और वह सोचता है कि उसके ध्यान की प्रगति अवरुद्ध

हो गई है। परन्तु यह उसकी धारणा भ्रांति मूलक है।

इन्द्रियों में परिणाम–

इन्द्रियों में भी धर्म, लक्षण, अवस्था परिणाम भी इसी प्रकार समझना चाहिए। जैसे धर्मी आँख का अपने धर्म नीले, पीले रूपादि विषयों में से एक रूप को छोड़कर दूसरे रूप का ज्ञान धर्म परिणाम है। इसी प्रकार उपर्युक्त रीति से लक्षण और अवस्था परिणाम जानना चाहिए।

राजनीति में परिणाम–

धर्म परिणाम–

ब्रिटिश कालीन भारत के समाप्त होने के उपरान्त प्रजातंत्र का राजनीति का धर्म परिणाम है।

लक्षण परिणाम–

भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए सन् 1957 का स्वतंत्रता संग्राम, सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाषचन्द्र बोस, महात्मा गाँधी आदि के कारण ब्रिटिश कालीन राज्य के अन्त होने के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे। यह लक्षण परिणाम है।

अवस्था परिणाम–

ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति एक थोड़े से काल में नहीं हुई। इसका प्रारम्भ सन् 1857 में हुआ और समाप्ति सन् 1947 में ठीक 90 वर्षों के उपरान्त हुई और पृथ्वीराज चौहान के दरबार के कवि चन्दवरदायी की भविष्यवाणी के अनुसार यह प्रजातंत्र राज्य 300 वर्षों तक रहेगा। यही अवस्था परिणाम है। इसी प्रकार तीनों परिणाम प्रत्येक घटना में घटित होते रहते हैं।

श्री राम लाल प्रभवे नमः

श्री गुरुदेव चन्द्रमोहन योग मन्दिर अलुपुर जि. पानीपत में गुरुदेव का जन्म शताब्दी समारोह 26, 27 व 28 सितम्बर को धूम–धाम से अलुपुर धाम में मनाया जा रहा है। सभी गुरु भक्तों से निवेदन है कि धाम में आकर पुण्य लाभ लें!

निवेदक
कार्यकारिणी समिति
अलुपुर

संस्कार भोग और जीवन दान

राजेश कुमार सिंह, बलिया

यूँ तो स्पष्ट मेरे घर के लोग नहीं जानते कि मैं दिव्य सिद्ध योग आश्रम सवांई आगरा से जुड़ा हुआ हूँ; तथा मेरे सर पर हर वक्त महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज का हाथ रहता है। चूँकि स्वार्थ का होना मानवी गुण है इसलिए कभी–कभी स्वार्थ पूर्ति न होने पर पराशक्ति पर ही सन्देह होने लगता है परंतु श्री गुरुजी कुछ ऐसी लीला कर देते हैं कि मन पुनः श्री चरणों में रमने लगता है। आश्रम से जुड़े कुछ हमारे शुभ चिन्तक भाई–बहन हमसे कहे भी कि अपने परिवार वालों को आश्रम में लाओ जिससे वह लोग भी प्रभु चरणों से जुड़ जाएँ; प्रभु कृपा से मेरा हर वक्त उत्तर रहा, प्रभु जब जोड़ना होगा जोड़ लेंगे मैं तो बस प्रार्थना करता हूँ करता रहूँगा। हमारे घर वाले पूजा पाठ तो करते हैं पर संत महात्माओं से ज्यादा सम्बन्ध नहीं रखते तथा आश्रम मंदिर का अन्न सेवन करना अच्छा नहीं समझते हैं। खैर मैं अपनी मुख्य बात पर चलूं..........

सन् 2008 फरवरी को मेरे पिताजी कोलकाता गये। उनकी कुछ तबियत खराब थी, वहाँ मेरे छोटे भाई जी सपरिवार रहते हैं। जब मुझे जानकारी मिली उस वक्त मैं आगरा आश्रम में था। गुफा में प्रभुजी, गुरुजी को प्रणाम कर तथा प्रसाद लेकर घर को चल दिया। घर पर दो दिन रहकर तथा 7000/– (सात हजार) रुपया लेकर मैं कोलकाता पिताजी के पास गया। वहाँ पिताजी की स्थिति देखकर स्तब्ध रह गया, वो पागलों की भांति हरकत कर रहे थे। किसी सामान को बार–बार उठाना, रखना, भोजन करते वक्त पेशाब कर देना। यह देखकर प्रभुजी से बार–बार यही कह रहा था कि प्रभुजी ये सब मैं क्या देख रहा हूँ? मैं एक अयोग्य बेरोजगार नाचीज हूँ, क्या मेरे परिवार वाले आपके दर्शन योग्य नहीं हैं? ये प्रश्न मैंने प्रभुजी से कई बार किया। मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूं कि पिताजी ठीक हो जायें। कोलकाता पी.जी. आई. के डाक्टर उनके सिर का सी.टी. स्केन करवाये और बताये कि इनके सिर में कभी की चोट लग गई है ये ध्यान नहीं दिये हैं वहाँ पर खून जम गया है, उसका आपरेशन करना पड़ेगा, कोई निश्चित नहीं कि बच पायेंगे, अगर बच भी गये तो विक्षिप्त रहेंगे।

दूसरे दिन सुबह मैं टी.वी. ऑन किया तो आस्था चैनल पर देखा लिखा है महाप्रभु योग शिविर स्वामी लाल जी महाराज। सोचा महाप्रभु तो केवल मेरे गुरुदेव ही कहलाते हैं और कोई नहीं, पिताजी जो बगल में लेटे हुए थे, मैं उनसे बोला उठकर बैठिए, फिर क्या उनके बैठते ही टी.वी. पर श्री महाप्रभु का दिव्य स्वरूप सामने था वरदहस्त लिए, पिताजी से कहा आप प्रणाम

करें मेरे गुरुदेव आपके सामने हैं आशीर्वाद दे रहे हैं। पिताजी दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किये। उस वक्त मेरी आँखों से अनवरत आंसू बह रही थी, मैं आँखें बंद कर लिया था ऐसा आभास हुआ प्रभुजी बाँह पकड़कर खींचते हुए मुझसे कह रहे हैं चल तेरे बाप को ठीक कर दूं। उसी शाम मेरे भाई के पास एक रिश्तेदार फोन किये कि एक होमियोपैथी डाक्टर उस बीमारी को अपनी दवा से पूर्णतया ठीक कर देने का आश्वासन दिये हैं। ठीक होने में दो माह लगभग लग जायेगा। अब मैं आश्वस्त हो गया कि पिताजी हमारे बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। फिर दो दिन और रहने के बाद मैं बलिया आ गया तथा वहाँ पाँच दिन रहने के बाद पुनः आश्रम में आ गया।

वह मार्च का महीना था; होली के एक दिन पहले आचार्य श्री दासलाल जी मुझसे बोले कि आचार्य श्री किशन दत्त जी चण्डीगढ़ पी.जी.आई. में भर्ती है, किसी को उनकी सेवा में जाना चाहिए मैं बोला दादाजी आप आज्ञा दीजिए मैं जाऊंगा, मगर होली के एक दिन बाद। आश्रम में ये बात फैल चुकी थी कि आचार्य किशन दत्त जी की किडनी और लिवर दोनों खराब हो चुका है अर्थात वो बचेंगे नहीं। प्रत्येक गुरु भाई–बहन के मन में यह प्रश्न भी कौंध रहा था कि आचार्य जी के साथ ये कैसे हो गया वो तो आश्रम में सेवा सबसे ज्यादा किया करते थे? होली के दूसरे दिन पुष्प प्रसाद श्री चरणों से तथा 7000 रु. लेकर मैं चण्डीगढ़ के लिए प्रस्थान किया, दूसरे दिन सुबह पी.जी.आई. चण्डीगढ़ में आचार्य किशन दत्त जी के पास पहुँचा। पुष्प प्रसाद आचार्य जी के हाथों में देते वक्त अनायास मुँह से निकला आचार्य जी यह प्रसाद लीजिए आप यहाँ से बिल्कुल ठीक होकर जायेंगे। प्रसाद को बिना देर किये ग्रहण करके तथा 7000 रुपया अपने पास लेकर वो बिस्तर पर लेट गये। शाम के समय भोजन ग्रहण करने के बाद मुझसे बोले तुम मेरे बिस्तर पर लेट जाना मैं बरामदे में लेटने जा रहा हूँ। ये बात कहकर तथा एक चादर लेकर वो चले गये; उसी रात भोर मे लगभग तीन बजे आये और बोले राजेश आज गुरुजी आये मेरे पास और बोले लला किशन दत्त तुम घबराओ नहीं मैं तुम्हें ठीक कर दूंगा। वहाँ डाक्टरों को भी सन्देह था कि इनकी किडनी और लिवर खराब है। चेकअप करवाने के बाद जब मैं रीपोर्ट लेने गया तो डाक्टर बताये कि आश्चर्य! इनकी न किडनी खराब है न लिवर बल्कि किडनी में दवाओं का थोड़ा इन्फेक्शन हो गया है जो ये बिना सोचे समझे प्रयोग किये हैं। यह दवा से ही ठीक हो जायेगा।

चण्डीगढ़ पी.जी.आई. में आचार्य जी के साथ रहते हुए मुझे सात दिन तथा अपना घर छोड़े 27 दिन हो गया था। पिताजी का समाचार जानने के लिए मैं घर पर फोन किया। खबर मिली कि वो होली के एक दिन पहले बलिया घर पर आ गये हैं तथा अभी तीन दिन से कोमा में हैं। ग्रह कटने लिए उनको बछिया छुआया जा रहा है तुम जल्दी घर पर आ जाओ। साथ–साथ पैसे की भी मांग थी जो मेरे पास नहीं था। मैं सुनकर सन्न रह गया; मेरे सामने धर्म संकट था। चण्डीगढ़ पी.जी.आई. में डाक्टरों से आचार्य जी के रिलीज होने के विषय में पूछा तो उनका

जवाब था अभी एक सप्ताह और रखना पड़ेगा। अगर मैं घर से सम्पर्क न किया होता तो कोई बात न होती। पितृ धर्म कह रहा है बेटा तुम आ जाओ, गुरु धर्म कह रहा है गुरु भाई की सेवा में रहो।' मैं उसी वक्त फोन से आचार्य दासलाल जी से सम्पर्क करना चाहा तो नहीं हो पाया, लगभग एक घण्टा तक इधर–उधर जहाँ से कुछ उम्मीद थी सम्पर्क करने का प्रयत्न किया पर निराशा ही हाथ लगी। अब प्रभुजी से प्रार्थना के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रही थी। मन में संकल्प लिया आचार्य जी को छोड़कर नहीं जाना है पिताजी के पास अब प्रभुजी को ही जाना होगा। शाम के समय एक पंजाबी (सिख) डाक्टर जो सीनियर थे घूमते हुए आए और अपने जूनियरों से बोले 'जो एक सप्ताह और भर्ती रखने की बातें कर रहे थे' कि इस रोगी को अब क्यों रखे हो, इसको कल रिलीज कर दो। अपने जूनियरों की बातों को अनसुनी करते हुए मुझसे बोले कल रिलीज का कागज तैयार करवाकर इन्हें ले जाओ घर पर भी दवा हो सकती है। जो ये आदेश दे रहे थे उस डाक्टर को मैं पहली बार ही देखा था, मुझे लगा इस रूप में प्रभुजी ही हैं। दाढ़ी–पगड़ी में मेरे विश्वास को और मजबूत बनाने आये हैं। दूसरे दिन आचार्य जी को पी.जी.आई. चण्डीगढ़ से रिलीज करवाकर सहारनपुर लेकर आ गया। पुनः वहां से एक दिन बाद सवाई आश्रम में आया स्नान करके गुफा में प्रभुजी के सामने खड़ा हुआ और बोला 'प्रभुजी मेरी यही तमन्ना है कि मेरा पूरा परिवार आपके श्री चरणों से जुड़ जाए, मगर पिताजी की गम्भीर स्थिति देखकर लग रहा है मेरा अरमान धूल में मिल जायेगा। अगर उनको कुछ हो गया तो ठीक नहीं होगा आप मुझे भी खोदेंगे।' ये मेरी पागलपन कहिए या और कुछ मगर ये ही मेरे शब्द थे। फिर रज पुष्प इत्यादि प्रसाद को लेकर मैं स्टेशन को ट्रेन पकड़ने के लिए चल दिया। ग्यारह बजे रात्रि में मैं ट्रेन में बैठा। लगभग एक बजे रात्रि में मुझे लगा प्रभुजी कह रहे हैं बेटा तेरे पिताजी का संस्कार बहुत क्लिष्ट है उन्हें ठीक तो कर दे रहा हूँ मगर भोग के लिए कुछ संस्कार तेरे माता जी को दे रहा हूँ, मैं इस बात को समझा नहीं। सुबह सात बजे मैं बनारस अपने चाचाजी के मकान पर गया और माँ को प्रणाम किया तो वो मुझे गले लगाकर जोर–जोर से रोने लगी, मुझे लगा पिताजी दुनिया से चले गये; मगर वहाँ तो कुछ और बात थी।

हुआ यूँ था कि घर पर बछिया छुआ देने के बाद तथा पिताजी की स्थिति को गम्भीर देखते हुए माताजी बोली मेरे घर परिवार वालों से कि इनको बनारस ले चलो किसी और अस्पताल में दिखायेंगे या मरना होगा तो काशी में ही मरेंगे। हमारे परिवार के शुभचिन्तक मेरे पिताजी को माता जी के साथ लेकर बनारस आ गये। वहाँ कई नर्सिंग होम के डाक्टर जवाब दिये कि इन पर पैसा लगाना फिजूल है ये बचेंगे नहीं। मगर सिगरा (बनारस) में स्थित गैलेक्सी हास्पीटल के डाक्टर तिवारी जी बोले मैं ऑपरेशन करूंगा अगर 72 घण्टे के अन्दर मैं होश में आ गये तो बच जायेंगे वरना नहीं। हमारे घर के लोग तैयार हो गये। खून–पेशाब के जांच करने के बाद श्रद्धेय डाक्टर तिवारी जी ग्यारह बजे रात्रि में आपरेशन कर दिये और प्रभु कृपा से

पिताजी दो घण्टे के बाद ही होश में आ गये, उधर माता जी स्नान घर में गई तो पैर फिसल गया जिससे गिरने से उनके जंघे की हड्डी अर्थात् कूल्हा टूट गया। तब मुझे प्रभुजी की बात– पिताजी का कुछ संस्कार माताजी पर देने की समझ में आई। माता जी का भी कूल्हे का आपरेशन बलिया हास्पीटल में हुआ। आज पिताजी शत प्रतिशत तो माताजी नब्बे प्रतिशत ठीक है। यही महाप्रभु जी द्वारा संस्कार भोग और जीवन दान है।

जयगुरुदेव!

संसार के सभी महापुरुष, साधु और सिद्धपुरुषों ने क्या किया है? उन्होंने एक जन्म में ही, समय को कम करके, उन सब अवस्थाओं का भोग कर लिया है, जिनमें से होते हुए साधारण मानव करोड़ों जन्मों में मुक्त होता है। एक जन्म में ही वे अपनी मुक्ति का मार्ग तय कर लेते हैं। वे दूसरी कोई चिन्ता नहीं करते, दूसरी बात के लिए एक निमिषमात्र भी समय नहीं देते। उनका पल भर भी व्यर्थ नहीं जाता। इस प्रकार उनकी मुक्ति का समय घट जाता है। एकाग्रता का यही अर्थ है कि शक्तिसंचय की क्षमता को बढ़ाकर समय को घटा लेना।

–स्वामी विवेकानन्द

प्यारे सद्‌गुरुदेव महाप्रभु चन्द्रमोहन जी

श्री अवनीश कुमार भटनागर, सहारनपुर

श्री सद्‌गुरुदेव जी के प्यारे बच्चों तुम जगह-जगह भटकते मत घूमो तुम जगह-जगह अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए जाते हो वास्तव में तो वह सब देवी-देवता तो एक परब्रह्म सर्वशक्तिमान के एकोऽहंबहुस्याम के संकल्प के अर्न्तगत देव, दनुज एवं मनुज जाति के उद्धार के लिए समय-समय पर अनेक रूपों में प्रादुर्भूत हुए हैं, वास्तव में तो सब मैं परम शक्ति तो एक ही कार्य कर रही है 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति'। उसी आधारभूत सर्वशक्तिमान परब्रह्म के साकार विग्रह हमारे योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी एवं सद्‌गुरु देव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी हैं जिनकी आज्ञा का पालन देव, देवी, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व सभी करते हैं। जिनके सिद्ध संकल्प से आज भी ऐसे-ऐसे असंभव कार्य होते देखे जा रहे हैं जो अन्यत्र कहीं भी भटकने से नहीं बन पा रहे थे परंतु सर्वशक्तिमान श्री महाप्रभु रामलाल जी एवं महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के श्री चरणों के प्रताप से सब संभव हो गये और अब भी हो रहे हैं।

सद्‌गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के महाप्रयाण के पश्चात् हमारे गुरु भाई-बहिनों में भटकाव की होड़ सी लग गई सोचने लगे अब कहाँ जायें किससे कहें, अब हमारे बिगड़े कार्य कौन संवारेगा? अरे श्री सद्‌गुरुदेव जी के प्यारो....जरा स्मरण तो करो जब-जब भी हमारा कोई कार्य बिगड़ा करुणामय श्री सद्‌गुरु देव जी ने अपना दिव्य वरदहस्त तत्काल प्रदान किया और मदद प्रदान करके कार्य बना दिया अब यह बात अलग है कि वह स्वयं प्रकट होकर कार्य बना दें। किसी के मन में प्रेरणा करके कार्य बना दें, स्वप्न में प्रकट होकर कार्य बना दें या किसी व्यक्ति के द्वारा कार्य बनवा दें। यह जीव के अपने श्रद्धा, समर्पण के आधार पर होता है। वह सर्वशक्तिमान तो हर समय अपने बच्चों के मददगार हैं। उन्होंने हमें गुरुमन्त्र के रूप में वह शक्ति दी है जिसको निरंतर 6 मास 3 घंटे जपने से साधक जगत में मांगने वाला नहीं अपितु देने वाला दाता बन जाता है ऐसा महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का हुक्म है। उन्होंने अपनी चिन्मयी मूर्ती सबके हृदय में स्थापित कर दी और उस चिन्मयी मूर्ती का ध्यान नित्य करने का आदेश दिया था, हमने यह सब छोड़ दिया। जिससे हमें शक्ति प्राप्त हो रही थी और करने क्या लगे जगत में लुभावने एवं महँगे बैनरों के तले चल रही अध्यात्म के नाम पर दुकानों में जाकर फंसने लगे अब आस्थाहीन कृपाहीन हुए घूमते हैं कोई कार्य नहीं बनता। श्री सद्‌गुरु देव जी की दी गई दौलत से हाथ धो बैठे और अब दर-दर कंगाल बने घूमते हैं कि हमारा काम यहाँ से बन जाये या वहाँ से बन जाये पर होता कुछ नहीं। स्मरण करो तुम श्री गुरुदेव जी के प्यारे बच्चे थे, श्री सद्‌गुरुदेव जी का वरदहस्त तुम्हारे सिर पर था तुम

शेर की भाँति निर्भय होकर सीना तान कर घूमते थे पर आज पूरी-पूरी संभावना है कि कर्म संस्कारों की बेड़ियों में जकड़े भीगी बिल्ली बनने पर मजबूर है और देव की कृपाचमत्कार के भरोसे जगह-जगह घूम रहे हैं। देखो उनकी कृपा भी होगी चमत्कार भी होगा। बस आवश्यकता है अपनी आस्था को सर्वशक्तिमान सद्‌गुरु महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के पावन श्री चरणों में समर्पित करने की अपनी श्रद्धा और समर्पण के भाव पुष्पों को श्री सद्‌गुरु देव जी के श्री चरणों में हमेशा के लिए चढ़ा देने की। ऐसा नहीं हो कि बिगड़े कार्य बनाने के लिए तो अपना मन श्री गुरु चरणों में समर्पित कर दिया और कार्य हो गया तो अपना मन कहीं और ले चले यह काम अच्छा नहीं; मन, तन समर्पित कर दिया तो कर दिया फिर वहाँ से नहीं हटायेंगे यदि बार-बार यही गलती करते रहे तो हमारी कभी भी आध्यात्मिक उन्नति नहीं होगी जैसे आज कोई इस स्कूल की बड़ाई सुन कर बच्चे का प्रवेश वहाँ करा दे कल किसी और स्कूल की बड़ाई सुनकर वहाँ करा दे परसों कहीं और दिन प्रतिदिन ऐसा ही करता रहे तो उस बच्चे की कभी उन्नति नहीं होगी। वह कभी प्रथम कक्षा भी पास नहीं कर पायेगा। हम ऐसा अन्याय अपने साथ कभी न करें। मानव चोला अनमोल है। 84 लाख योनियों के बाद मिला है आत्म उद्धार का यह अवसर हाथ से चला गया तो फिर हाथ नहीं आयेगा, पूर्व जन्मों के भारी शुभ कर्मों के अम्बार के अम्बार के बदले सर्व शक्तिमान महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का वरदहस्त सिर पर मिला है उनकी चरण शरण में रहकर आत्मिक उन्नति का साधन कर लें हमारे संसारी कार्य तो वह सब करते ही रहते हैं। अपने बच्चों को कोई दु:ख तकलीफ होने नहीं देते। भारी से भारी संकट आने से पहले ही थोड़े से भुगतान में ही कटवा डालते हैं कभी-कभी किसी को इसका अहसास भी करा देते हैं और प्राय: नहीं भी कराते और जीव को पता भी नहीं चल पाता कि सर्वशक्तिमान सद्‌गुरु देव जी ने कितना बड़ा संकट आने से पहले ही टाल दिया।

जैसे सर्वशक्ति सम्पन्न सद्‌गुरुदेव हमें मिले है, वह प्राय: ढूँढने से भी सम्भव नहीं है। हम उनको ढूँढने नहीं निकले यदि हम उनको ढूंढते और उनको ढूँढने में मुसीबतें उठाते तो उनकी कीमत को कुछ जानते वह तो कृपा करके सर्वशक्तिमान सद्‌गुरुदेव जी ने स्वयं ही हमें देख लिया कि हमारे संस्कारी बच्चे कहाँ-कहाँ पर हैं। उन्होंने परम कृपा करके निकट आकर या प्रेरणा से अपने पास बुलाकर शक्तिसंचार दे दिया, आत्म उन्नति कर दी अन्दर की दुनिया में प्रवेश करा दिया और चरण शरण बख्श दी नहीं तो हमें तमीज ही नहीं थी कि श्री सद्‌गुरु देव जी के श्री चरणों में कैसे रहना चाहिए। आज भी हम उनकी किसी भी आज्ञा का पालन नहीं कर पाते।

श्री सद्‌गुरु देव जी के प्यारो जगत में अपने करामाती सर्वशक्ति से विभूषित श्री गुरुदेव जी का नाम रौशन करो यत्र, तत्र बिल्कुल मत भटको तुम देवी-देवताओं अन्य मठमहन्तों के कार्य करने में लगे हो और तुमको बनाने वाले, चमकाने वाले, तुम्हारे सोते भाग्य को जगाने वाले श्री गुरुदेव जी के कार्य अधूरे पड़े हैं। देवी-देवताओं के कार्य तो अन्य लोग भी

कर लेंगे परंतु श्री सद्‌गुरु देव जी के कार्य तो उनके प्यारे बच्चे ही करेंगे। साधारण जीव भी महाप्रभु जी की शरण में नहीं आ सकता जिसके पास जन्मजन्मान्तरों में इकट्ठी की गई पुण्य की भारी पूँजी है वही जीव श्री महाप्रभुजी के सामने आता है अन्यथा सामान्य जीव तो उनके दर्शन तक का अधिकारी नहीं है। श्री सद्‌गुरुदेव जी का यदि थोड़ सा भी संस्कारी उनके सामने आ जाये तो वह कुछ न कुछ अवश्य ही पायेगा और वह कुछ न कुछ इतना अधिक होगा जो उसे अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता और यदि कहीं उसने श्री सद्‌गुरु जी के कन्ट्रोल में रहकर कुछ जप, स्वाध्याय, ध्यान, आज्ञापालन समाधि आदि कर लिया तो वह उसमें अवश्य-अवश्य ही भारी आत्मिक चमक दे देते हैं और फिर वह इहलोक एवं परलोक दोनों ही जगहों पर प्रकाशित रहा करता है।

इसलिए उठो जागो आलस्य और प्रमाद को छोड़ो और तोड़ डालो अज्ञान व सारे जंजालों को जो हमने गुरुभक्ति के रास्ते में खड़े कर लिये हैं अपने परम पिता सर्वशक्तिमान सद्‌गुरुदेव चन्दमोहन महाप्रभुजी के कार्य के लिए सदा सदैव के लिए तत्पर हो जाओ, गुरु भक्तों की सदा और प्रत्येक स्थान पर जय होती है और गुरु द्रोही की सदा दुर्गति शास्त्रों में इसके आख्यान भरे पड़े हैं। एक श्रेष्ठ गुरुभक्त बनो ताकि श्रेष्ठ गुरु कृपा प्राप्त कर सको, इस संसार में बिना गुरु के कुछ भी नहीं, यहाँ भगवान के जितने भी अवतार हुए हैं उन्होंने सबने उस समय के गुरु रूपकों की पूजा की है। श्री रामचरित मानस कहती है-

प्रातः उठहि श्री रघुनाथा, मात पिता गुरु नावहिमाथा।

भगवान ब्रह्म एवं भगवान शंकर भी यदि संसार में जन्म धारण करके आ जायें, तो उन्हें भी गुरुदेव की शरण लेनी पड़ेगी और गुरु सेवा करनी पड़ेगी -

गुरु बिन भव निधि तरहि न कोई, जो विरंचि शंकर सम होई।

जब अवतारी महापुरुषों ने सदा सदैव सद्‌गुरु शरण ली है और गुरु वन्दना की है तो साधारण हम मनुष्य जीवों की तो बात ही क्या है। यदि आध्यात्मिक जगत में कुछ चमकना है तो सिर्फ गुरु भक्ति और गुरु समर्पण से ही कार्य बनेगा सद्‌गुरु सेवा का जो भी अवसर मिले उसे छोड़ना नहीं चाहिए। श्री विजयादशमी सन् 2009 को सद्‌गुरुदेव श्री चन्दमोहन महाप्रभुजी का जन्म शताब्दी का महान पर्व है, इस पावन पर्व पर सद्‌गुरु देव जी के प्रत्येक शिष्य का कर्तव्य है इसके लिए अपने को तन,मन, धन से प्रस्तुत करने का। सद्‌गुरुदेव जी के जन्म शताब्दी का उत्सव वैसे तो प्रत्येक शहर में होना चाहिए, यदि सब जगह न हो सके तो जो भी गुरुदेव के चरण रज से धन्य नगर हैं उनमें तो यादगार समारोह हो ही सकते हैं, वहाँ के गुरु भाई बहिनों को यह कार्य करना है और अपने आसपास के गुरु भाई बहिनों के साथ घटी दिव्य घटनाओं को लेकर साहित्य की रचना भी करके शताब्दी पर प्रकाशित कर सकते हैं।

श्री सद्‌गुरुदेव चन्दमोहन जी के लाड़ले बच्चों आपमें कुछ तो बहुत अच्छे साहित्यकार

है आप अपने प्यारे गुरुदेव की दिव्य घटनाओं का साहित्य तैयार कीजिए जो अच्छे लेखक है और संगीतकार भी है तो आप श्री सद्गुरुदेव जी के विषय में सारगर्भित प्रभावशाली रचनायें तैयार कीजिए, आपमें जो भाई–बहिन अच्छे वक्ता और ज्ञानी जन है वह श्री सद्गुरुदेव जी के विषय में दिलों को झकझोरने वाले शोधपूर्ण विचार भक्त समाज में प्रेषित करें। आपमें जो बहुत अच्छे साधक एवं अनुभवी है वह अपने साधना मार्ग के द्वारा श्री सद्गुरु देव जी के सिद्धयोग मार्ग का प्रचार–प्रसार करें। आपमें जो भाई बहिन अच्छी धन संपदा वाले है वह श्री सद्गुरु देव जी के जन्म शताब्दी के उत्सवों में आने वाले खर्च में दिल खोल कर सहयोग करें क्योंकि अधिकांश गुरु भाई बहिनों को श्री सद्गुरु देव जी की महति कृपा ने ही धनवान बनाया है तो उन भाईयों का कर्तव्य बन जाता है कि सद्गुरु देव जी की कृपा से प्राप्त दौलत में से उनके कार्य में जी खोलकर सहयोग करें जिससे श्री गुरुदेव के किसी भी कार्य में धन की कोई कमी न रहे। जिससे महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के जन्म शताब्दी समारोह में चार चाँद लग जायें क्योंकि हमारे जीवन में ऐसा पावन अवसर फिर आने वाला नहीं और यदि कुछ भाई यह कहे कि हमारे पास कुछ भी नहीं तो फिर अपने तन के द्वारा, मन के द्वारा गुरुदेव की सेवा का कोई भी अवसर खाली न जाने दें जब भी कहीं अवसर मिले तो तन से मन से समपर्ण और सेवा का दान अवश्य–अवश्य ही दें। यदि हम हर प्रकार से या किसी एक प्रकार से भी सम्पन्न है और अपने प्यारे और सच्चे सद्गुरुदेव जी के किसी एक प्रकार से भी सम्पन्न हैं और अपने प्यारे और सच्चे सद्गुरुदेव जी के किसी काम न आ सके तो हमारा साधन सम्पन्न होना, समर्थ एवं ज्ञानी होना सब बेकार है। दुनियां एवं दुनियावी वस्तुएँ सब नाशवान है और अपने साथ भी यहाँ से कोई कुछ भी नहीं ले जा सकता। फिर उस संपदा के द्वारा गुरु सेवा करके पुण्य अर्जित कर लिया जाये जो इहलोक और परलोक दोनों जगहों पर सदा सदैव काम आयेगा ही।

श्री राम लाल प्रभवे नमः

श्री सिद्धगुफा सवाई धाम में गुरुदेव का जन्म शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष्य में 19 सितम्बर से 28 सितम्बर तक विविध कार्यक्रम रहेंगे। सभी गुरु भाई बहिनों से निवेदन है कि उत्सव में आकर पुण्य अर्जित करें व उत्सव की शोभा बढ़ायें।

निवेदक
समस्त ब्रह्मचारी गण
श्री सिद्ध गुफा सवाई, आगरा

सिद्ध गुफा सुखधाम

योगाचार्य अमित कुमार मिश्र, शुक्लागंज (उन्नाव)

चलो रे मन, सिद्ध गुफा सुखधाम।
जहाँ गूँजती है गुरुवर की वाणी आठो याम।।

अखंड ज्योति जहाँ जलती है, नित नूतन आशा जगती है।
सफल मनोरथ करती जिसकी रज ललित ललाम।।

जन सेवा का सार जहाँ है, सिद्धों का संसार जहाँ है।
प्रतिमाएँ रहती हैं तजकर, धन–साधन–पद–नाम।।

जहाँ सहज मन से मन मिलता, अनदेखा अपनापन मिलता।
योग सुधा जहाँ बरसती, नित सुबह और शाम।।

जहाँ न है अपना–बेगाना, सीखा सुख देकर सुख पाना।
दर्द बंटा लेते हैं सब देकर सुख आराम।।

सिद्धयोग का तीर्थ यहीं है, योग विद्या न और कहीं है।
तम डूबे जग ने देखी है, भोर यहीं अभिराम।।

जो जीवन इससे जुड़ जाते अनगिन पुण्य उन्हें मिल जाते।
इसके दर्शन को स्वयं विकल भारत के चारों धाम।।

जन–जन बहुत विकल जब देखे, शापित नयन सजल जब देखे।
छोड़ हिमालय दौड़े प्रभुवर, रामलाल भगवान।।

कलियुग में विश्वास जहाँ है, श्रद्धा का जन्मस्थान जहाँ है।
उस पावन अमित धरा को बारम्बार प्रणाम।।

अन्त समय न कोई, साथ निभाएगा!

जगदीश राए बंसल 'अधम'

जप ले, गुरु का नाम फिर पछताएगा।
अन्त समय न कोई साथ निभाएगा।।

गुरु की महिमा न्यारी, ये तीन लोक के रखवारी,
राम रति बुआ उद्धारी, कलि काल के अवतारी,
जन्म सुधर जाएगा, अन्त समय ना..........

चरणों से ध्यान लगा ले, तू सफल कर्म बना ले,
ज्योति से ज्योति जला ले, तू सोया भाग्य जगा ले
फन्दा कट जाएगा, अन्त समय ....

गुरु वचनों की गाँठ लगा ले, हृदय में डेरा बसा ले
काम क्रोध पै संयम पा ले, आशक्ती दूर भगा ले
पार हो जाएगा, अन्त समय.........

लीला धारी दया करेंगे, वो संकट आप हरेंगे
चरणों में शरणा देंगे, साधन योग बढ़ेंगे
'अधम' तर जाएगा, अन्त समय..........

आध्यात्म सिद्धि का गणितीय सूत्र

डॉ. ऋषिराम शर्मा (लखनऊ)

ज्ञान तीन प्रकार का होता है। प्रथम भौतिक ज्ञान है जोकि इन्द्रियों के माध्यम से बुद्धि के द्वारा भौतिक पदार्थों के विषय में वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से प्राप्त होता है। दूसरा प्रातिभ ज्ञान है जो कि ध्यान तथा सबीज समाधि के माध्यम से पदार्थों के सूक्ष्म तत्वों तथा दिव्य लोकों और उनके ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है और तीसरा ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान है जोकि परमात्मा के स्वरूप को जानने तथा उसमें प्रवेश करने के लिए किया जाता है। प्रथम दोनों ज्ञान गुणात्मक है और माया की गुणों की विशिष्ठ अवस्थाओं में प्राप्त होता है। गुणो की चार अवस्थायें हैं –

'विशेषाविशेषलिंग मात्रालिंगानि गुणपर्वाणि'

अर्थात् विशेष तथा अविशेष अवस्थाओं में भौतिक ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा अविशेष, लिंगमात्र तथा अलिंग अवस्थाओं में प्रकृति के स्थूल एवं सूक्ष्म सभी तत्वों का प्रातिभज्ञान प्राप्त होता है। आध्यात्मिक ज्ञान की अनुभूति निर्गुण अवस्था में निर्बीज समाधि में होती है। अतः उसे कैवल्य ज्ञान भी कहा जाता है, क्योंकि द्वैत समाप्त हो जाता है, सब कुछ परमात्मा के स्वरूप में लीन हो जाता है।

एक और बात समझना आवश्यक है कि शास्त्रों का परमात्मविषयक शब्दज्ञान पूर्ण ज्ञान नहीं है, क्योंकि –

'न गच्छति विनां पानं व्याधिः औषधशब्दतः।'

विना अपरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैः न मुच्यते।।

अर्थात् किसी औषधि का सेवन किये बिना केवल उसके नाममात्र से रोग दूर नहीं होता। उसी प्रकार योगसिद्धि के द्वारा निर्बीज समाधि में जाकर प्रत्यक्ष अनुभव किये बिना केवल ब्रह्मज्ञान के शब्द ज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता। भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है कि –

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति।।

अर्थात् परमात्म ज्ञान के समान कोई भी ज्ञान परम पवित्र नहीं है और वह आत्मतत्व में समय आने पर योगसिद्धि के पश्चात् स्वयं प्रकट होता है। उपनिषद् परमात्मज्ञान की प्राप्ति के लक्षण बताते हैं कि –

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैः जन्ममृत्युप्रहाणिः।

तस्याभिध्यानात् तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्य केवलं आप्तकामः।। (श्वेता. 1/11)

अर्थात् परमात्मा का ज्ञान होने के फलस्वरूप समस्त कर्मबन्धन, सर्वसंशय तथा अज्ञानजनित मायिक बन्धन टूट जाते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश आदि पंच क्लेशों के क्षीण होने से जन्म मृत्यु का आवागमन समाप्त हो जाता है। उस परमात्मा के स्वरूपसाक्षात्कार से शरीर छूटने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है और इस जगत में भी वह आप्तकाम होकर विश्व के समस्त ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है।

भगवान श्रीकृष्ण भी इसी की पुष्टि करते हैं –

इदं ज्ञानं उपाश्रित्य मम साधर्म्यमागतः।
सर्गे अपि नोजायन्ते प्रलये न व्यथयान्ति च।।

अर्थात् परमात्मा का सम्यक अपरोक्ष ज्ञान का अनुभव हो जाने पर जीवात्म भाव परमात्म भाव में विलीन हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे कि प्रकाश के आने पर अंधकार विलीन हो जाता है। अपने सत्यस्वरूप को प्राप्त करने के बाद वह जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस स्थिति को ही आध्यात्मिक सिद्धि या परमात्मस्वरूप की प्राप्ति कहते हैं।

2 (I) संस्कार (आध्यात्मिक)

हमारे जीवन में संस्कारों का बहुत महत्व है। हम जो भी कर्म करते हैं या संकल्प करते हैं, वह सब संस्कार के रूप में अन्तःकरण में चिन्हित हो जाता है। जिस तरह वर्ल्ड वेबसाइट पर डाला गया विषय इन्टरनेट पर चिन्हित हो जाता है। जन्म–जन्मान्तर तक संस्कार के रूप में कर्माशय बना रहता है। गीता में इसका प्रमाण है कि –

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
ग्रहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।

अर्थात् जीवात्मा नवीन शरीर धारण करती है अथवा शरीर छोड़कर मृत्यु को प्राप्त होती है और कर्मानुसार किसी भी लोकान्तर में जाती है, तो इन संस्कारों को साथ लेकर जाती है, जिस प्रकार कि वायु किसी भी गन्धयुक्त पदार्थ को स्पर्श करने के बाद उसकी गन्ध को अपने साथ ले जाती है। यह संस्कार इन्द्रियों मन तथा बुद्धि के संघात अन्तःकरण में रहते हैं। जब मृत्यु होती है, तब उस समय की प्रक्रिया का उपनिषद् में इस प्रकार वर्णन किया गया है –

अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयते वाङ्मनसि सम्पद्यते
मनः प्राणे, प्राणः तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्
यच्चितः तेनैषः प्राणमायाति प्राणः तेजसा युक्तः
सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति

अर्थात् हे सोम्य ! जब जीवात्मा शरीर छोड़ता है तब उसकी इन्द्रियाँ मन में लीन हो जाती हैं, मन तथा बुद्धि प्राण में लीन हो जाते हैं, प्राण आत्मा के तेज में लीन हो जाता है। इस प्रकार इस संघात के साथ वह आत्मतेज पूर्व संकल्पों के अनुकूल परमात्मा की माया के द्वारा यथोचित लोक में उसकी गति होती है। यह तेजोमय प्राण शरीर कर्माशय की वायु के प्रभाव में संस्कारों की गन्ध अपने साथ लिए भ्रमण करता है। श्रुतियों में इसका वर्णन मिलता है कि –

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः यथाक्रतुरस्ति लोके पुरुषो भवति
तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत, मनोमयः प्राणशरीरः भारूपः
(छान्दो. 3/14/2)

अर्थात् निश्चय ही यह जीवात्मा संकल्प प्रधान है, जैसा संकल्प होता है वैसा ही इस लोक में तथा परलोकों में उसकी गति होती है। उसके संकल्प ही संस्कार रूपी गन्ध के समान उसके साथ चलते हैं। इसी कारण जीवात्मा अपने मनोमय तथा प्राणमय कोष के साथ तेजरूप में विभिन्न योनियों में प्रकट होती है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि –

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिः अहं बीजप्रदः पिता।।
सत्वं रजस्तमः इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।
ये चैव सात्विकाः भावाः राजसाः मातसाश्च ये।
मत्तः एवेति तान् विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि।।
दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

अर्थात् समस्त योनियों में जितने भी स्वरूप प्रकट होते हैं यानि जन्म लेते हैं, उनके स्वरूप वाले माता–पिता तो माया के खेल में निमित्त मात्र हैं, सत्यता तो यही है कि मेरी महामाया प्रकृति ही गर्भ धारण करने वाली माता है और परमात्मा ही बीज देने वाला पिता है। तभी तो वेदमन्त्र कहते हैं कि **'तत्सष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्'** परमात्मा अपनी प्रकृति की स्वयं रचना करके स्वयं ही उसमें प्रवेश कर जाता है। उपनिषद् इसे और स्पष्ट करते हैं –

'स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपिति'

अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न में अपने ही तेज से अपनी ही ज्योति के प्रकाश में जागृत जगत का नाश तथा स्वप्न जगत का निर्माण होता है वैसे ही परमात्मा के द्वारा इस संसार का निर्माण होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्पष्टरूप से कहते हैं कि यद्यपि जीवात्मा भी परमात्मा का अंश ही है, तथापि वह अपने ही कर्मों के फलों के कारण शरीर के बन्धन में फँसा सा दीखता है – '**स्वभावजेन तु कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा**'। इस बन्धन का ताना–बाना माया के तीन गुण करते हैं। कोई भी प्रारब्ध कर्म जब फल देने को उद्यत होता है तो उसी के अनुकूल गुणों की प्रवृत्ति तथा प्रवाह उत्पन्न होता है। सात्विक गुण सुख की अनुभूति कराता है, राजसी गुण दुःख की अनुभूति कराता है तथा तमो गुण अज्ञान तथा मोह उत्पन्न करके बुद्धि को कुण्ठित करता है और कुण्ठित बुद्धि विनाश का कारण बनती है। गुणों के इस मायाजाल से अपने को मुक्त करना परमात्मा या गुरुदेव की कृपा बिना असम्भव सा हो जाता है। मेरे मन में भी अनेक बार यह शंका उभरती थी कि जब परमात्मा तथा सद्गुरुदेव सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान हैं और उनमें पक्षपात के विकार की धारणा बन नहीं सकती तो फिर जिस तरह महाअवतार बाबाजी ने श्यामाचरण लहरी का, हमारे दादा गुरु महाप्रभु जी ने रामरती, हरिहरानन्द, गोपालानन्द आदि को सिद्ध पुरुष बनाकर उद्धार किया, जिस प्रकार नारद जी ने वाल्मीकि जी का उद्धार किया तो फिर हमारा क्यों नहीं ? इसका सन्तोषजनक उत्तर है – **हमें उनके और अपने संस्कारों का अज्ञात होना।** इसलिए सूत्र में संस्कारों का विशेष महत्व है। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि समाधि की अवस्था प्राप्त करने के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान के साधनों की परिपक्वता तथा सिद्धि की आवश्यकता है, फिर भी '**भवप्रत्ययः विदेहप्रकृतिलयानाम्**' अर्थात् पूर्व जन्मों में विदेहावस्था तथा प्रकृति में लयता के संस्कार वालों को जन्म लेने मात्र से समाधि की प्राप्ति हो जाती है। यह संस्कारों का खेल है। कभी–कभी लोग परमात्मा पर यह दोष लगाते हैं कि वह कुछ लोगों पर कितना अन्याय करता है कि प्रत्यक्ष देखने में निर्दोष सताये जाते हैं, कुछ पर प्रकृति की भूकम्प, कुछ पर विस्फोट, कुछ पर अतिवर्षा, अतिगर्मी, अतिठण्डक की क्रूरता बरसती है तो कुछ निर्धनता के कारण भूख से तड़पते हैं तो कुछ मनुष्यों की ही क्रूरता के शिकार होते हैं। यह सब परमात्मा क्यों होने देता है, जबकि वह सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है। इस पर महर्षि व्यास ब्रह्मसूत्र में लिखते हैं कि –

वैषम्यनैघृण्ये न सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति

अर्थात् समाज में जो विषमता तथा घृणा देखने में आते हैं, वह केवल धर्म–अधर्म की अपेक्षा के कारण है, क्योंकि कर्मविधान के अनुसार '**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**' अर्थात् जो पाप या पुण्य कर्म किया गया है तो उसका भुगतान अवश्य करना

पड़ता है। विडम्बना यह है कि –

पुण्यात् सुखमाप्नुवन्ति पुण्यं नैव कुर्वन्ति मानवाः

पापात् दुःखमाप्नुवन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।

अर्थात् कर्मविधान के अनुसार पुण्यकर्म के फलस्वरूप सुख की प्राप्ति होती है किन्तु मनुष्य पुण्यकर्म नहीं करना चाहते तथा पापकर्म के फलस्वरूप दुःख की प्राप्ति होती है किन्तु मनुष्य यत्नपूर्वक पापकर्मों में व्यस्त रहते हैं। तब इस विरोधी विडम्बना में परमात्मा कहाँ दोषी है? वह तो उदासीनभाव में निरासक्त होकर साक्षित्व करता है। आध्यात्मिक सिद्धि में संस्कारों का कितना महत्वपूर्ण योगदान है, यह बात अर्जुन की शंका के समाधान में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं स्पष्ट कर दी कि अर्जुन ने भगवान से पूछा –

अयति श्रद्धया उपेतो योगात् चलितमानसः।

अप्राप्य योगसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।

अर्थात् हे भगवान ! इस जन्म में जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक योगसाधना में लगा हुआ था किन्तु किसी कारण योगभ्रष्ट हो गया और योग सिद्धि को प्राप्त किये बिना ही उसकी मृत्यु हो जाती है तो उसकी क्या गति होती है, क्या उसकी इस जन्म की साधना व्यर्थ हो जाती है? इस पर परमात्मा ने विश्वास दिलाया कि –

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशः तस्य विद्यते।

न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते हि अवशोऽपि सः।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।।

अर्थात् हे पार्थ ! योग साधना में लगे हुए साधक की न इस पृथ्वी लोक में और न मृत्यु के बाद हानि होती है। इस लोक के सुख–ऐश्वर्य तो मृत्यु के बाद छूट जाते हैं, किन्तु योग साधना की कमाई संस्कार के रूप में साथ रहती है। इसीलिए कल्याणमार्ग के पथिक की कहीं भी दुर्गति नहीं होती। मृत्यु के पश्चात् भी वह उन दिव्य लोकों में जाता है जहाँ पुण्यों के प्रभाव से पुण्यात्मा जीव जाते हैं। वहाँ पर पर्याप्त समय तक अपनी अतृप्त कामनाओं को

पूर्ण करता है और उसके बाद शुद्ध आचरण वाले सर्वसुविधाओं से युक्त श्रीमानों के परिवार में मनुष्य लोक में जन्म लेता है अथवा दुर्लभ योग–सम्पन्न माता–पिता के घर जन्म लेता है। जन्म लेने के बाद वह पूर्व जन्म में योग साधना के द्वारा अर्जित बुद्धियोग को सहज प्राप्त करके पुन: पूर्ण योग–सिद्धि प्राप्त करने के अपने लक्ष्य को पूर्ण करता है। पूर्व जन्म में किया गया योग अभ्यास स्वत: सुगमता से उभरने लगता है। सम्पूर्ण वातावरण उसके लिए योग–सिद्धि के अनुकूल बनता चला जाता है। इसीलिए योग का जिज्ञासु भी शब्द–ज्ञानियों से श्रेष्ठतर माना गया है, ऐसा स्वयं परमात्मा का निर्णय है।

यहाँ पर एक बात और ध्यान देने योग्य है कि आध्यात्मिक संस्कार (I)कभी नष्ट नहीं होते हैं। वासनाओं के संस्कार फल–भोग के बाद नष्ट भी होते हैं और अहंकार बुद्धि से किये गये कर्मों के नवीन संस्कार बनते भी जाते हैं। राग–द्वेष के कारण वासनाओं का ताना–बाना जीवात्मा को जीवित रखता है और जन्म–मृत्यु का संसार चक्र कर्मविधान के अनुसार चलता रहता है। किन्तु प्रत्येक जन्म में आध्यात्मिक संस्कारों की सम्पत्ति भगवत्कृपा से जीवात्मा के साथ रहती है तथा योनि विशेष के गुणों के कारण वह प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार अवस्थाओं में प्रकट होती है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने बुद्धियोग रूपी आध्यात्मिक संस्कारों के विषय में इस रहस्योद्घाटन को किया है –

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमस्य धर्मस्य: त्रायते महतो भयात्।।

अर्थात् बुद्धियोग रूपी आध्यात्मिक संस्कारों का आरम्भ तो होता है यानि उपार्जन किया जा सकता है, किन्तु इसका नाश कभी नहीं होता। परमात्मा स्वयं इन संस्कारों का योग–क्षेम करता है और कोई बाधा भी नहीं आती है। अत: तनिक सा भी उपार्जित आध्यात्मिक संस्कार कभी न कभी परमात्मस्वरूप की प्राप्ति में सफल होता है। प्रत्येक जन्म के आध्यात्मिक पुरुषार्थ से आध्यात्मिक संस्कारों में वृद्धि तो होती है किन्तु हानि नहीं। यह उस करुणासागर परमात्मारूप पिता की कृपा ही है। सूत्र में तीनों मार्गों में संस्कार(I) के बाद पुरुषार्थ का योगदान दर्शाया गया है। जन्म से पूर्व पुरुषार्थ शून्य है, इसीलिए S=I के साथ जीवात्मा संसार में आती है तथा R>I की स्थिति में अध्यात्म की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है, किन्तु R<I होने पर जन्म–मृत्यु का आवागमन होता रहता है, तथापि परमात्मा की कृपा से संस्कार नष्ट नहीं होते। यहाँ एक तथ्य और भी ध्यान देने योग्य है कि सद्गुरुदेव भी परमात्मा का ही एक रूप है, क्योंकि वह 'गुरुणामपि गुरु: कालेनानवच्छेदात्' अर्थात् महर्षि पतंजलि के अनुसार समय की सीमा के परे होने के कारण परमात्मा गुरुजनों का भी गुरु है।

3. R (वैराग्य)

वैराग्य भी सूत्र का एक बहुत महत्वपूर्ण अवयव है। कारण यह है कि संसार तथा माया दोनों मन से उत्पन्न हुए हैं और उनका अस्तित्व तभी तक है जब तक उनमें मन आसक्त है यानि मन का राग–द्वेष कार्य करता है। जैसे ही राग–द्वेष के विकार का नाश होता है, मन की आसक्ति समाप्त हो जाती है, इसी को वैराग्य कहा जाता है। उपनिषद् यह रहस्य बताते हैं कि –

मन: एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:, विषयाक्तो निबन्धाय मोक्षाय निर्विषयं मन:।

अर्थात् मनुष्यों की माया जगत से मुक्ति अथवा उसमें बन्धन का कारण मन है। जब मन विषय–भोगों में आसक्त रहता है तो मनुष्य माया के बन्धन में फँसे रहते हैं और जब मन निरासक्त होकर वैराग्य प्राप्त कर लेता है तब मनुष्य माया के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं और परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। इसी कारण वैराग्य के बिना मोक्ष सम्भव नहीं।

परमात्मा श्रीकृष्ण ने बताया कि –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतो सनातन:।
मन: षष्ठेन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।
शरीरं यदवाप्नोति यदुत्क्रामतीश्वर:।
ग्रहीत्वेतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।
श्रोत्रं चक्षु: स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।।

अर्थात् जीवलोक में परमात्मा का ही अंश जीवात्मा के रूप में शरीर में वास करता है, उसने ही मन तथा इन्द्रियों की प्रकृति में से शरीर में आकर्षित किया है। शरीर त्यागते हुए या ग्रहण करते हुए भी उसके साथ ही रहते हैं, जिस प्रकार एक बार वायु गन्धयुक्त पदार्थ से वायु गन्ध को अपने साथ ले जाती है। शरीर में रहते हुए यह जीवात्मा मन को आधार बनाकर इन्द्रियों के भोगों को भोगती है। इसका परिणाम यह होता है कि–

'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्ता अत्याहु: मनीषिण:'

अर्थात् जीवात्मा मन तथा इन्द्रियों से संयुक्त हो जाने के कारण भोक्ता बन जाता है। भोक्ता होने का दुष्परिणाम यह होता है कि वह आनन्दस्वरूप होने पर भी दु:खी रहता है और जन्म–मृत्यु तथा जरा, व्याधि आदि दु:खों के बन्धन में फँस जाता है। भगवान श्रीकृष्ण भी स्वीकार करते हैं –

पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसदयोनिजन्मसु।।

अर्थात् मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ रूपी प्रकृति में स्थित होकर विषयों के भ्रान्तिजन्य भोग भोगने के कारण पुरुष को योनियों में प्रवेश कर अज्ञानवश दुःखी होना पड़ता है। इसका कारण यह है कि –

ये हि संस्पर्शजा: भोगा: दु:खयोनय: एव ते।
आद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेषु रमते बुधा:।।

अर्थात् इन्द्रियों तथा उनके विषयों के स्पर्श से जो क्षणिक सुख की प्राप्ति होती है, वह वस्तुत: दु:ख रूप ही होते हैं, क्योंकि वह क्षणिक स्पर्शमात्र हैं और वासना तथा आसक्ति का जनक होने के कारण उनके परिणाम दु:खरूप हैं तथा जन्म मृत्यु के आवागमन के कारण हैं। जिस प्रकार खुजली के रोग में खुजाने से क्षणिक सुख की अनुभूति तो होती है किन्तु रोग तथा कष्ट और अधिक बढ़ जाता है। विषय भोगों में आसक्ति विनाश का कारण बनती है, क्योंकि –

ध्यायतो विषयान् पुंसा संगस्तेषु उपजायते।
संगात् संजायते काम: कामात् क्रोध: उपजायते।।
क्रोधात् भवति सम्मोह: सम्मोहात् स्मृतिविभ्रम:।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणस्यति।।

अर्थात् जब मन में विषय सुख को प्राप्त करने की चाह रहती है और उनका स्मरण होता है, तो उनके प्रति वासना तथा आसक्ति जन्म लेती है। आसक्ति से उसे पाने की कामना उत्पन्न होती है और जब कोई उसमें विरोध तथा विघ्न पैदा करता है तो उसके प्रति क्रोध उत्पन्न हो जाता है। क्रोध से मोहान्धता और मोहान्धता से स्मृति भ्रमित होती है और स्मृति के भ्रमित होने पर बुद्धि का नाश होता है। बुद्धि के नाश से जीवात्मा की अधोगति होती है यानि निकृष्ट योनियों में जन्म होता है। इस प्रकार भोगों में आसक्ति विनाश का कारण बनती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आध्यात्मिक सिद्धि तब तक संभव नहीं जब तक आत्मा के रूप में दृष्टा तथा मन–बुद्धि की चित्तवृत्तियों के रूप में दृश्य की एकात्मता तथा एकरूपता समाप्त नहीं हो जाती और यह केवल अन्तिम निर्बीज समाधि अवस्था में ही संभव है। किन्तु वैराग्य के बिना किसी भी समाधि में प्रवेश असम्भव है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि –

योगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धि समाधौ न विधीयते।।
नहि असन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन:।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मति:।

वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

अर्थात् जिसके मन में विषय भोग के प्रति वैराग्य नहीं है तथा जिनका मन भोगैश्वर्य में आसक्त है, ऐसे साधकों की बुद्धि समाधि में प्रवेश नहीं कर सकती। वह व्यक्ति योगी नहीं हो सकता, जिसने अपने मन से कामनाओं के संकल्पों का त्याग न किया हो। जिसका मन की वृत्तियों पर संयम नहीं है, उसको योग सिद्धि संभव ही नहीं। मन पर विजय प्राप्त कर योग साधना में प्रयासरत पुरुष ही उचित साधनों के अभ्यास से योगी बन सकता है। चित्तवृत्तियों के नितान्त निरोध के बिना दृष्टा अपने सत्यस्वरूप में प्रकट होता ही नहीं। महर्षि पतंजलि इसे स्पष्ट करते हैं कि –

दृष्टा दृशिमात्रो शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः

अर्थात् परमात्मा रूप दृष्टा केवल साक्षिमात्र है, परमशुद्ध है, फिर भी चित्त में वृत्तियाँ रहने से दृष्टा तद्‌रूप दिखाई देता है और परम वैराग्य के बिना वृत्तियों का निरोध हो ही नहीं सकता। अतः किसी साधना में सफल होने के लिए विषयों में राग रूप काम का नाश करो, क्योंकि –

तस्मात् त्वं इन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजाहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

अर्थात् आध्यात्मिक साधना की सिद्धि के लिए सबसे पहले वैराग्य को अपनाकर इस पापी काम का नाश करो जिसके कारण परमात्मा का ज्ञान तथा परमात्मस्वरूप की प्राप्ति संभव नहीं है। मन की वृत्तियों का निरोध केवल योग साधना तथा वैराग्य धारण करने पर ही संभव है। महर्षि पतंजलि भी यही मानते हैं कि **'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः'**। अर्थात् वैराग्यपूर्ण चित्त के द्वारा चिरकाल तक निरन्तर सत्कारपूर्वक सश्रम अभ्यास से योगसिद्धि संभव है, अन्यथा नहीं।

सर्वत्र ईश्वर की छवि निहारते रहना ज्ञानयोग है। निश्चल भाव से अपने को ईश्वर के हाथ सौंप देना भक्तियोग है और ईश्वर–भाव से सभी प्राणियों के कल्याण के लिए निष्काम कर्म करते रहना कर्मयोग है। यह सभी संभव है जब अन्तरात्मा के दिव्यसूत्र में बुद्धि, मन और इन्द्रियों को गूँथ दिया जाय। ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण समस्त प्राणियों के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं। अतः मन के द्वारा विषयों, धन एवं प्रभुत्व की आसक्ति का मानसिक त्याग कर पूर्ण समर्पण भाव से हृदयस्थ परमात्मा का चिन्तन एवं आश्रय ग्रहण करने से शाश्वत् शान्ति सुलभ होगी।

सद्‌बुद्धि का ज्ञान

निर्मला चन्देल, उदयपुर (राज.)

ज्ञानवान की बुद्धि जीवन को
अनुपम बना देती है
बुद्धिवान मानव जग को
संचालित कर देता है
भक्ति पूर्ण ज्ञानता सिद्धि
प्रदान कर देती है
ज्ञान, बुद्धि न शिक्षाप्रद
बुद्धि हीनता को संप्रसारित कर देता है
मानव मन का आत्म तत्व से प्राप्त ज्ञान
बुद्धि से अमृत बन जाता है
मनुज करे यदि निरोध, ज्ञान-ध्यान का
जन विकास से हित हो जाता है
ज्ञानवान, भक्ति भाव, समृद्धितत्व
को प्रदान कर देती है
सद्‌बुद्धि, सद्‌ज्ञान, सद्‌विद्या
मानव मन को संचालित करती है
विश्वज्ञान का अध्ययन प्राप्त कर
तत्व साधना से अमिट जीवन प्राप्त कर लेता है
सत्व ज्ञान से आत्म तत्व का
विश्व पोषक और निरीक्षक बन जाता है
बुद्धिवान को भक्ति भाव, आत्म ज्ञान
प्राप्त हो जाता है
'अनन्त श्री जी' के आत्म ज्ञान से
भक्ति प्रदान कर देते हैं
मानव को ज्ञानवान, भक्तिवान, समृद्धिवान बना देते हैं।

याद रखो

जब तक शरीर स्वस्थ है, भोग भोगने की शक्ति है, भोगों में मन लगा है, मृत्यु सामने दिखायी नहीं देती, तब तक अवश्य ही बहुतों को लिखी बातें अनावश्यक और कड़वी लग सकती हैं; परंतु एक दिन सभी को इन बातों पर विचार करना पड़ता है और उस समय पहले की भूल का पछतावा बहुत ही भयानक होता है। पहले से ही विचार करके चेत जाओ तो अच्छी बात है।

धन, यौवन, रूप, पद, सम्मान, शक्ति, विद्या, वाग्मिता- सब के सब मौत का विकराल मुँह देखते ही विध्वस्त हो जायेंगे। इनसे कुछ भी नहीं होगा। अतएव इनकी प्राप्ति को जीवन का उद्देश्य मत बनाओ और प्राप्त होने पर तनिक भी अभिमान मत करो। यह चार दिनों की चाँदनी जरूर ही नष्ट हो जायेगी।

शास्त्र, संत, महात्मा और भक्तों की वाणी का अनुशीलन और अनुसरण कर भगवान् पर विश्वास करो; भगवान् के महत्व को समझो और भगवान् के प्रेम को पाने के लिए भगवान् की शरण हो जाओ।

• • •

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11 August 2009

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

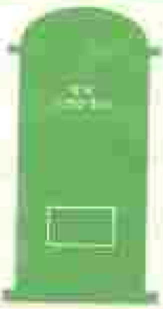

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं या स्पेस आवरण (स्पेस पेयर) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर की घड़ी पर स्टाम्प डीनोमिनेशन की घड़ी लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति घड़ी प्रतिदिन घड़ी का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

सिद्धयोग

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सरांई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा